

छाया

जरासंध

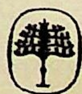
छाया

अनुवादक
शरद देवड़ा

मूल्य : पांच रुपये ◈ पहला संस्करण 1972
CHHAYA (Bengali Novel), by Jarasandh Rs. 5.00

छाया

जरासंध



राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

अभी कुछ देर पहले ही डायरेक्टर बोर्ड की ज़रूरी मीटिंग हुई थी। कई काम बहुत दिनों से मुलतवी पड़े थे। हमेशा की तरह इस बार भी जनरल मैनेजर द्वारा उन्हें एजेंडा में उचित स्थान देने पर भी चेयरमैन आदतन उन्हें इस मीटिंग से दूसरी मीटिंग में ले जाना चाहते थे। कोई उच्च पदाधिकारी या सहयोगी इस सम्बन्ध में कुछ जानना चाहता तो जनरल मैनेजर हिमांशु गुप्त सिर झुकाकर कहते, "मैं नहीं जानता।"

"तो क्या करूं ?" हाथ की फाइल दिखाकर प्रश्न पूछता सहयोगी।

"कुछ नहीं। जहां मालिक की इच्छा से काम होता है, वहां उसकी अनुमति के बिना हम लोग कुछ नहीं कर सकते।"

इस बार पूरी चीज़ों का फैसला हो गया था। कम्पनी की विभिन्न शाखाओं में बोर्ड के निर्णय पहुंचाने पड़ेंगे। बाहरी आफिस की जिन चिट्ठियों के पीछे रिमाइंडर भेजते-भेजते कई हैरान हैं, क्रोधित हैं, उसकी भी उचित व्यवस्था करनी पड़ेगी। गुप्ता साहब मोटे ऊनी कपड़े से ढकी विशाल मेज़ पर दोनों ओर रखी फाइलों के ढेर में डूबे हुए थे, एवं एक-एक बंडल खत्म करके कार्पेट बिछी फर्श पर सशब्द फेंक रहे थे। उनसे कुछ ही दूरी पर, बायें हाथ में विशिष्ट आकृति का छोटा-सा पैड और दाहिने हाथ में एक पेन्सिल लिये, स्टेनोग्राफर कनिका सेन तैयार बैठी थी। कुछ देर बाद ही उसकी पतली-पतली दो अंगुलियों और अंगूठे की तीव्र गति बॉस के डिक्टेशन से द्रुत गति के साथ ताल मिलाती हुई विचित्र रेखाओं द्वारा पन्ने पर पन्ने भरने लगी।

एक जटिल मामले के दौरान ही टेलीफोन की घंटी बज उठी।

"ओह!" एक अस्फुट परेशानी का स्वर गुप्ता साहब के अप्रसन्न मुख से निकल पड़ा। उनके दोनों हाथ ढेर सारे नत्थी किए हुए कागज़ों से भरे थे।

बोले, "देखो तो कौन है ?"

कनिका रिसीवर उठाकर बोली, "हैलो !" उसकी आवाज़ ऐसे ही बहुत पतली थी, फिर दिन-भर की थकावट के कारण और ज़्यादा पतली सुनाई पड़ी।

उस ओर से क्रोधित, तेज़ नारी-कंठ-स्वर सुनाई दिया, "आप कौन बोल रही हैं ?"

"मैं जी० एम० के ऑफिस से बोल रही हूं।"

"वे क्या कर रहे हैं ?"···'वे' शब्द पर अपेक्षाकृत ज़्यादा ज़ोर था, और व्यंग्य भी। इसके साथ ही निर्देश मिला, "उन्हें रिसीवर दीजिए।"

कनिका-निःशब्द उठकर रिसीवर गुप्ता साहब के हाथ के पास ले आई। वे हाथ न बढ़ाकर झुंझलाहट-भरे स्वर में बोले, "पूछिए ना, कौन है ? क्या काम है ? कहिए, मैं बहुत व्यस्त हूं।"

स्टेनो निरुपाय होकर फिर चोंगे में मुंह लगाकर विनीत स्वर में बोली, "वे बहुत व्यस्त हैं। आप···"

"मैंने जो कहा, वही कीजिए।" बात समाप्त होने से पहले ही तीव्र स्वर सुनाई पड़ा। लगा, कहीं रिसीवर का पर्दा न फट जाए। इस बार मौनमुख कनिका ने रिसीवर बॉस के सामने रख दिया और अपनी सीट पर जा बैठी। रिसीवर उठाकर गुप्ता साहब शुष्क एवं गम्भीर स्वर में बोले, "जी० एम०।"

"बड़े असमय में परेशान किया। यही न ?" उस ओर से व्यंग्यात्मक स्वर सुनाई दिया।

हिमांशु की दोनों भौंहों के बीच सलवटें पड़ गईं। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। उत्तर की आवश्यकता भी नहीं थी। उस ओर से उसी लहजे में सुनाई पड़ा, "सुना, ब-हु-त व्यस्त हैं। इसमें सन्देह भी क्या है ? ऐसी वासन्ती सन्ध्या। निर्जन कमरा···"

चुन-चुनकर कही गई ऐसी ही और भी न जाने कितनी ही वचन-सुधाएं गुप्ता साहब निःशब्द सुनते गए। यदि अकेले होते तो शायद इच्छा से या अनिच्छा से एक-आध कड़े शब्द उनके मुख से भी निकल जाते। किन्तु ऐसी परिस्थिति में यह अनुचित लगता। सिर्फ दो हाथ दूर जो

दूसरा व्यक्ति बैठा था, हालांकि उसका ध्यान इस ओर नहीं था और चेहरे पर भी कौतूहल का लेशमात्र चिह्न नहीं था, फिर भी गुप्ता साहब जानते थे कि जिस तरह इस जाति के पास एक तीसरा नेत्र है, उसी तरह विधाता के बाद ये एक तीसरे कान के भी अधिकारी हैं। जो कुछ सुनने योग्य है उससे कहीं अधिक सुन सकते हैं, जितना दृश्यमान है, उससे कहीं अधिक गहरी दृष्टि होती है इन लोगों की। इसलिए हिमांशु गुप्ता चेहरे पर बनावटी मुसकान का भाव लाते हुए नितान्त स्वाभाविक स्वर में, जैसे कोई मामूली पारिवारिक प्रश्न का उत्तर दे रहे हों, बोले, हां, "मुझे लौटने में कुछ देर होगी।"

"यह तो समझ ही रही हूं।" तुरन्त उत्तर आया उस ओर से, "आज लौट सकेंगे कि नहीं, यही सोच रही थी। सुना है, ऑफिस-रूम के बराबर ही एक विश्राम-कक्ष भी है।"

'विश्राम' शब्द पर इतना ज़ोर देकर बोली कि उसका गूढ़ अर्थ छिप नहीं सका।

गुप्ता साहब ने तिरछी नज़र से एक बार स्टेनो के भावहीन चेहरे की ओर देखा, फिर जो मन में आया, वह कह दिया, "अच्छा, तो फिर उसे भी यही बात बता देना।"

"किसे क्या बता दूं ? क्या ऊटपटांग बक रहे हो ? आजकल बोतलें भी खुलने लगी हैं क्या ?"

"अच्छा।" कहकर रिसीवर रख दिया गुप्ता साहब ने। यथासम्भव सहज एवं शान्त स्वर में बोले थे गुप्ता साहब, जिससे कनिका समझे कि पत्नी के किसी आनन्दित प्रस्ताव में सानन्द स्वीकृति दी है।

उस ओर मलिना गुप्ता शायद यह कल्पना भी नहीं कर सकती थी कि उसकी बात खत्म होने से पहले ही रिसीवर रख दिया जाएगा। विस्मित स्वर में 'क्या हुआ ?' कहकर कई बार 'हैलो, हैलो' किया। कोई उत्तर न मिलने पर सशब्द रिसीवर पटककर झुंझलाती हुई द्रुत गति से उस ओर के बरामदे में एक सोफे पर जा बैठीं। चेहरे पर गम्भीरता और उत्तेजना की झलक स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी।

सामने की कुर्सी पर पैर फैलाए बैठा शोभन दत्त कीमती सिगरेट का

धुआं छोड़ रहा था। एक बार तिरछी नज़र से देखकर बोला, "क्या हुआ ? कोई हुक्म मिला ?"

"हुकुम !" तीखी दृष्टि से देखती हुई बोली मलिना, "क्या मैं किसीके हुकुम की परवाह करती हूं ?"

"अच्छा, अंग्रेज़ी में जिसे परमिशन कहते हैं।"

"बिलकुल नहीं। किस चीज़ का परमिशन ?"

"फिर किस उद्देश्य से फोन करने गई थीं ?"

इस प्रश्न का उत्तर दिये बिना ही बोली मलिना, "स्टेनो क्या बोली, जानते हो ? वे 'ब्रू-ऊ-ब'···व्यस्त···हैं।"

जहां तक सम्भव था चबा-चबाकर कनिका के स्वर और बोलने के लहजे का अनुकरण करने की चेष्टा की मलिना ने।

शोभन ने बिना रुकावट के जवाब दिया, "कोई गलत बात नहीं कही। डिक्सन कम्पनी के जनरल मैनेजर का व्यस्त रहना ही स्वाभाविक है।"

"यह बात मुझे इस लड़की के मुंह से सुननी पड़ेगी ?"

"ओह, यह बात है ! यदि कोई लड़का होता, तो शायद आपत्ति नहीं होती।"

"इसका मतलब ?" माथे पर सलवटें लाते हुए जिस प्रकार मलिना ने पूछा, उससे शोभन को लगा नारी-जाति की चिरन्तन दुर्बलतानुसार इस सुस्पष्ट कटाक्ष से मलिना रुष्ट हो गई है। तत्काल क्षमा-याचना के स्वर में बोला, "कुछ ख्याल मत करना मौसी, मैंने सीरियसली नहीं कहा। प्योर एण्ड सिम्पल मज़ाक किया था।"

लेकिन मलिना शायद इसे उचित अर्थ में न ले सकी। शायद उसमें एक ऐसा कांटा छिपा हुआ था, जो उसे बेध गया। सीधी होकर बैठती हुई बोली, "तुम क्या कहना चाहते हो, खुलकर कहो ? तुम सोचते हो, यह मेरी जैलेसी है ?"

शोभन कुंठित स्वर में बोला, "मुझे माफ कर दो। तुम्हारा लड़का मेरा मित्र है, मैं तुम्हें मौसी कहकर पुकारता हूं। तुमने मुझे बहुत-से अधिकार भी दे रखे हैं, जिसके फलस्वरूप कितनी ही बार इन्हीं सब विषयों को लेकर हमलोग आलोचना भी करते रहे हैं, जो हमलोगों के दायरे से

बाहर की चीज़ है, शायद कुछ अशोभनीय भी, फिर भी इस बारे में मेरा कुछ न बोलना ही बेहतर है।"

"नहीं, तुम्हें बोलना ही पड़ेगा।" ज़िद पकड़ ली मलिना ने। "मैं सुनना चाहती हूं।"

"अच्छा, तो सुनो। लेकिन इससे पहले एक छोटी-सी कहानी सुनाता हूं :

—कुछ दिन पहले मैं बर्दवान जा रहा था। सेकेण्ड क्लास का कम्पार्टमेण्ट था। भीड़ थी, लेकिन बहुत ज़्यादा नहीं। मैं एक बेंच के अन्तिम छोर पर बैठा था। ठीक बगलवाली बेंच पर एक जोड़ा पहले से ही एक कोना दखल किए हुए था। लड़के की उम्र करीब २२-२३ वर्ष की एवं लड़की करीब १७-१८ वर्ष की थी। जहां तक सम्भव था सटकर बैठे, सिर झुकाए हुए अनर्गल बके जा रहे थे। जो दो-एक शब्द सुनाई पड़े, उससे अनुमान लगाया, शायद नई-नई शादी हुई है। देखने से भी ऐसा ही लगता था। शरीर से अब भी सुहागरात के फूलों की ताजा सुगन्ध आ रही थी।"

"तुम्हें इसका तजुर्बा कहां से हुआ ?"

"ओह, मेरे भाग्य में न लिखा हो, लेकिन दोस्तों से तो इस बारे में सुना ही है।"

"ओह ! अच्छा, बोलते जाओ।"

" वे अगल-बगल बैठे थे। वर कोने की ओर तथा वधू उसके पास। उसके बाद थोड़ी-सी जगह छोड़कर दूसरों को बैठना पड़ा था।

" किसी स्टेशन पर गाड़ी रुकते ही तीन छोटे बच्चों को साथ लिये एक वृद्ध और वृद्धा का जोड़ा और चढ़ा। चढ़ने के साथ-साथ वे इधर-उधर दौड़ने लगे। आखिर महिला तो उस ओर अपने एक स्वजातीय के पास बैठ गई। भले आदमी को जगह नहीं मिली। कोने की ओर जो जगह खाली पड़ी थी उधर एक बार डरते-डरते देखा, संग-संग वर ज़रा और कोने में खिसक गया एवं मधुर स्वर में बोला, 'बैठिए ना।' वृद्ध दुविधा में पड़ गया। उसके बाद वर की ओर देखकर बोला, 'यदि आप बुरा न मानें तो इस तरफ···'

" इतना सुनते ही वर ने उसके प्रस्ताव को नामंज़र कर दिया। 'कोई

ज़रूरत नहीं, आप वहीं बैठ जाइए।'

"वृद्ध बैठ ही रहा था कि इतने में उस ओर से अचूक हुंकार आई, 'इधर आओ।...शोभा, जाओ तुम वहां जाकर बैठो। सुन रही हो? ऐ अभागी लड़की।'

"शोभा नाम की लड़की, जो करीब आठ साल की थी, खिड़की से मुंह निकालकर बाहर देख रही थी, सम्भवतः मां की गर्जना सुन नहीं पाई थी। इस बार झट से उछलकर चेहरे पर आश्चर्य का भाव लाती हुई इधर-उधर देखने लगी।

"'इस तरह मेरी ओर क्या देख रही हो? जाओ, उधर जाकर बैठ जाओ।'

"मां के इस हुक्म को वह समझ गई और सिर नीचा किए उधर वधू के पास जाकर बैठ गई।

"वृद्ध हमलोगों के पास ही खड़ा था। वृद्धा ने फिर मुंह बिचकाकर कहा, 'क्या हुआ? अब खड़े-खड़े क्या देखते हो, वहां जाकर बैठ नहीं सकते?'

"हाथ के इशारे से उसने शोभा वाली जगह दिखा दी।

"'रहने दो, बैठने से क्या होगा? अभी तो चढ़ा हूं।' कहकर रूखे मुंह से दरवाज़े के पास चला गया और बाहर मुंह निकालकर शायद प्रकृति की शोभा निहारने लगा।

"इतनी देर में वधू शोभा के साथ बातों में मग्न हो गई। जैसी कि औरतों की आदत होती है, वह शायद घरेलू बातें पूछ रही थी। उधर शोभा की मां इस तरह आंखें फाड़-फाड़कर देख रही थी कि यदि सत्-युग होता तो वधू क्षण-भर में भस्म हो जाती।

"अगली स्टेशन पर लड़के-लड़कियों को लिये-दिये वे उतर गए। जाते वक्त वृद्धा बेचारी नव-वधू के चेहरे पर एक अग्नि-मिश्रित दृष्टि छोड़ गई।

"पहले तो वधू हंसकर पति के शरीर पर लुढ़क-सी गई। फिर हठात् सीधी होकर बैठते हुए पूछा, 'अच्छा, बताओ तो वह औरत हठात् मेरे ऊपर इतनी खफा क्यों हो गई थी? जिस तरह मुझे घूर रही थी, यदि बस चलता तो शायद कच्चा चबा जाती।'

"दूल्हा सिगरेट का कश खींच रहा था। बोला, 'हूं।'

" 'हूं क्या ? बताओ ना ?'

" 'मुझे क्या मालूम ?'

" 'अन्दाज़ा तो लगा ही सकते हो।···ठीक है, मत बताओ।'

" 'खफा होने का कोई कारण होगा, इसीलिए खफा हो गई।'

" 'क्या कारण था ?'

" 'जब तुम उसकी तरह होओगी···'

" 'इतनी मोटी।' कहकर ऐसे देखा, कि पति जो कहना चाहता है, उसे सुनने से पहले ही भय से कांप गई हो।

" 'मोटे-पतले का प्रश्न नहीं है। जब तुम्हारी उम्र उसके जितनी होगी···'

" 'मैं भी इसी तरह करूंगी ? उंह, कभी नहीं। क्या तुम विश्वास कर सकते हो कि मैं भी इतनी ओछी हो सकती हूं ?'

" 'विश्वास करने की इच्छा तो नहीं होती, लेकिन आशंका ज़रूर होती है।'

" 'क्यों ?'

" 'आज जिस चीज़ को खोकर वह ऐसी हो गई है, उस समय तुम्हारे पास भी वह चीज़ नहीं रहेगी।'

" 'क्या चीज़ ?'

" इस बार वह पत्नी के कान के पास मुंह ले जाकर बोला, 'उसका नाम है यौवन।'

" वधू का चांद-सा गोरा मुंह हठात् लाल हो उठा। पति को हाथ से धकेलते हुए बोली, 'जाओ, तुम बड़े असभ्य हो।'

" उसके बाद कुछ देर तक दोनों चुप रहे। लड़की खिड़की से बाहर देखने लगी और लड़का छत की ओर। करीब दो मिनट बाद वधू ने वर की ओर मुंह घुमाया। ज़रा ज़ोर देकर बोली, 'बेकार बात है।'

" लड़के ने कोई जवाब नहीं दिया और मन्द-मन्द हंसने लगा। मैं जानता हूं, उसने बेकार बात नहीं की थी।···ओह, मौसी।"

दीवाल की ओर देखकर शोभन हठात् ऐसे चिल्लाया जैसे कोई सांप देख लिया हो या उससे भी कोई भयानक दुर्घटना हुई हो। मलिना भी

चौंक पड़ी और उस ओर देखने लगी। उसने डरते-डरते पूछा, "क्या हुआ ?"

"मालूम है, कितना बज रहा है ? जल्दी उठो और अब और ज़्यादा देर करेंगे तो हावड़ा स्टेशन पर ही आराम करना पड़ेगा।"

लेकिन ऐसा प्रतीत नहीं हुआ कि मलिना चिन्तित है। दीवाल-घड़ी पर एक नज़र डालकर बोली, "अभी तुमने जो कुछ कहा, वह यदि सच है, तो यह चीज़ सिर्फ औरत के सम्बन्ध में ही क्यों, एक दिन पुरुष को भी तो इसे गंवाना पड़ता है।"

"यह सच है, लेकिन इसके फलस्वरूप वे इतने मुफलिस नहीं हो जाते। उनके जीवन में बाहरी दो-चार चीज़ें और भी हैं। कर्म-जगत नामक एक कठिन वस्तु है। लेकिन औरतों के लिए, और विशेषकर हमारे देश की औरतों के लिए, यह बला नहीं है। यदि कहा जाए, उनका एक-मात्र मूलधन यह यौवन ही है, तो अनुपयुक्त न होगा।"

मलिना चुपचाप बैठी सुनती रही। शोभन कुछ देर रुककर फिर बोला, "मैं बेकार हो गई हूं, मेरी जगह किसी और ने दखल कर ली है—यह शंका औरतों को जितना व्याकुल कर देती है, पुरुषों को उतना नहीं। उन्हें इतनी फ़ुर्सत ही कहां है ? उन्हें नाना प्रकार के कामों में और चिन्ताओं में खुद को डुबो देना पड़ता है।"

"औरतें भी तो बैठी नहीं रहतीं। बाहरी काम-काज न हो, घर का काम-काज तो करना ही पड़ता है।"

"किन्तु आजकल की औरतों की खुराक सिर्फ इतने में पूर्ण नहीं होती। पहले के ज़माने में वे इसीमें तृप्त थीं। आज बाहरी लहर उनके अन्तर-महल की दीवाल को क्रमागत तोड़ती जा रही है। उससे न तो वह अपने को बचा पाती हैं और न ही स्वच्छ मन से खुद को उसमें तैरा पाती हैं। हमेशा यह डर बना रहता है कि कहीं मेरा घर न उजड़ जाए।...किन्तु हमारा विचार क्या है, मौसी ? आज खड़गपुर न जाने से हमलोगों का पूरा प्रोग्राम अपसेट हो जाएगा। फिर भी..."

"अपसेट नहीं होगा। रात में जाने के लिए और भी कई गाड़ियां हैं। निराश मत होओ, कल सुबह जाने से भी तो कोई हानि नहीं होगी।"

"इसका मतलब, आज तुम नहीं जा रही हो? तो मैं चलता हूं।" लेकिन शोभन के खड़े होते ही मलिना बोली, "बैठो। पहले मेरी एक बात का जवाब दो।"

बैठते ही सबसे पहले उसने एक सिगरेट सुलगाई। मलिना उस ओर की दीवाल पर टंगे एक लैण्डस्केप के चित्र पर दृष्टि गड़ाए बैठी रही। उसकी आंखें देखने पर ऐसा लगता था जैसे उस चित्र में वह अपने बीते हुए दिनों से कुछ खोजने की चेष्टा कर रही है। शोभन की सिगरेट प्रायः खत्म होने को थी, इसी बीच मलिना का मृदु स्वर फिर सुनाई दिया। इतनी देर जिस लहजे में बातें कर रही थी उससे यह एकदम भिन्न था। जैसे इसमें एक आवेशमय क्लान्ति जुड़ गई थी। बोली, "एक दिन मैं भी तो इसी घर में तृप्त थी। तुम जिसे बाहरी जगत कह रहे हो, वहां से कोई तकाज़ा नहीं आया था, इसका अभाव भी महसूस नहीं हुआ था। ऐसा लगता है, सर्वप्रथम तुम्हीं ने मुझे उसकी चाबी लाकर दी थी।"

"ये सब बातें अभी रहने दो, मौसी। कारण जो भी हो, आज तुम्हारा मन ठीक नहीं है।" अनुनय भरे स्वर में बोला शोभन।

मलिना आपे से बाहर हो गई, "मुझे बोलने दो।"

कुछ देर रुककर फिर उसी स्वर में बोली, "आज वहां से बहुत दूर चली आई हूं। लेकिन क्या मिला मुझे, बता सकते हो?"

शोभन ने कोई जवाब नहीं दिया। शायद जवाब देने की ज़रूरत भी नहीं थी। मलिना ने खुद ही अपने प्रश्न का उत्तर दिया। ज़रा निराशा के स्वर में बोली, "लगता है, अब वापस नहीं लौट सकती।"

शायद और भी कुछ बोलती। लेकिन शोभन की स-कलरव अभ्यर्थना ने बाधा दी। "अरे, धुर्जटि! आओ, आओ। क्या हालचाल हैं? इतने दिन कहां थे?"

"यहीं था और कहां जाऊंगा?" मृदु हंसकर बोला धुर्जटि। फिर आगे बढ़कर मलिना के पैर छू प्रणाम किया। मलिना उसके सिर पर हाथ फेरती हुई बोली, "बैठो। तुम्हारे पिताजी कैसे हैं?"

"कुशल हैं। क्या चाचा जी नहीं आए?"

"नहीं। कोई काम है क्या?"

"हां। एक ज़रूरी काम था। एक बार ऑफिस में फोन करके देखूं ?"

"हां, हां, देखो ना।"

घुर्जटि के आंखों से ओझल होते ही शोभन ने आंख के इशारे से पूछा, "क्या ज़रूरी काम है ?"

मलिना ने सिर झुकाकर कहा, "मैं नहीं जानती।"

"ज़रूर किसी व्यापारिक-ऑफिस में कनिष्ठ कर्मचारी की टूटी-फूटी कुर्सी खाली हुई है। गुप्ता साहब की सिफारिश के बल पर किसी तरह उसपर कब्ज़ा जमाया जाए, यही उद्देश्य लगता है। रवि ठाकुर ने जिसे कहा है—'अन्नपायी बंगवासी।' अच्छे नम्बरों से बी० ए० पास किया है। बाहर जाने से नौकरी की कमी नहीं है। एक अच्छा ऑफर भी आया था। लेकिन बाहर नहीं जाएगा। क्या कारण है ? ना, बाबा।"

"तुम शायद नहीं जानते, सचमुच उसके पिताजी बहुत कष्ट झेल रहे हैं। इसके अलावा, बहुत-से छोटे-छोटे भाई-बहन···"

"जानता हूं, किन्तु यह नहीं समझ सकता कि इसके लिए एक इतना ब्राइट लड़का अपना भविष्य क्यों नष्ट करेगा ?"

"उसकी शायद यह मान्यता है कि बाहर जाकर खुद का भविष्य बनाने की अपेक्षा मां-बाप, भाई-बहनों की सहायता करना ज़्यादा महत्त्व-पूर्ण है।"

"इस झूठी धारणा ने ही तो बंगाली जाति को कभी ऊंचा उठने नहीं दिया। दुनिया में यह अत्याचार और कहीं नहीं है। बड़ा होने के बाद लड़का खुद अपने रास्ते पर चलता है। बाप उसके कन्धे पर 'सिन्दबाद' के बुड्ढे की तरह सवार नहीं रहता।"

"तुम भूल रहे हो, शोभन। बाप ने बहुत कष्ट उठाकर इस लड़के को आदमी बनाया है।···"

"और इसी अधिकारस्वरूप आज बिछौने में पड़ा-पड़ा खाता है। यदि मैं इस लड़के की जगह होता तो···"

घुर्जटि के पैरों की आहट कानों में पड़ते ही मलिना ने आंख के इशारे से शोभन को रोक दिया और उसके पास आते ही पूछ बैठी, "बात हुई ?"

"नहीं हुई। ऑपरेटर ने बताया कि उन्हें तो ऑफिस से निकले बहुत देर हो गई है।"

'बहुत देर हो गई है।' मन ही मन बड़बड़ाते हुए टीस उठी मलिना। सहसा जैसे आंखों की पुतलियों में बिजली कौंध गई। जैसे उसीके आघात से उछलकर खड़ी होती हुई शोभन से बोली, "चलो।"

"इस समय कहां चलें ?"

"खड़गपुर जाने के लिए बहुत-सी गाड़ियां मिलेंगी। मैं पांच मिनट में तैयार होकर आती हूं।"

कहती हुई आंधी की तरह भीतर चली गई। शोभन निरुपाय-सा दाहिने हाथ की अंगुलियां उल्टी कर उन पर ठोड़ी टिकाए बैठा रहा।

धुर्जटि बोला, "क्या बात है ? तुम्हारे उसी···क्या कहते हैं उसे, हां, 'निलय' शायद उसीका कोई कार्यक्रम है ?"

"क्या मतलब ? ऐसा लगता है, तुम्हें यह नाम पसन्द नहीं आया। 'शुभानन्द निलय' है पूरा नाम। यानी शुभ और आनन्द। क्या तुम भी चलोगे ?"

"मेरे पास इतना समय कहां है ?"

"मैं जानता हूं। तुम लोगों को समय कभी नहीं मिलेगा। तुम लोग उसी स्कूल के लोग हो, जिनके लिए जीवन सिर्फ आत्म-पीड़न है। तुम लोग अपनी भाषा में जिसे कहते हो—त्याग। जीवन एक परम उपभोग की वस्तु है, यह सोचते हुए भी तुम लोगों को डर लगता है।"

"चलता हूं। मुझे कुछ काम है।"

शोभन हंस पड़ा, "शायद मेरी बात तुम्हें कड़वी लग रही है, बर्दाश्त नहीं कर पा रहे। अच्छा, तो फिर रहने दो। आजकल क्या कर रहे हो ? वही मास्टरी और ट्यूशन ?"

"और कुछ मिलता ही कहां है ?"

"तुम पाने की चेष्टा ही नहीं करते हो। हिरन ने तुम्हें लिखा था कि सूडान में वह तुम्हें एक अच्छी नौकरी दिला देगा।"

"वह तो अब भी लिखता है। लेकिन इससे लाभ क्या होगा ?"

"क्यों ?"

"जो मिलेगा, पूरा खुद पर ही खर्च हो जाएगा। फिर घर में क्या दूंगा ?"

"घर-घर···यह घर का मोह कब छूटेगा हमलोगों से ? मैंने बी०ए० पास कर लिया होता तो क्या इस मलिना गुप्ता की मुसाहिबी करता ?" चारों ग्रोर देखकर गला ठीक करते हुए बोला शोभन।

धुर्जटि ने हंसकर जवाब दिया, "इसे तुम मुसाहिबी कहते हो ? तुम तो उसके, क्या तो कहते हैं उसे—इम्प्रेसरिग्रो हो।"

" धत् तेरे की। जीवन से घृणा हो गई है, ब्रदर। लेकिन क्या करूं ? ग्रॉल फादर्स ग्रार इन्कन्सिडरेट। खुद ने बहुत बड़ा मकान बना लिया है, गाड़ी खरीद ली है और खाते-पीते अपने जीवन का पूरा मज़ा ले रहे हैं। ग्रौर लड़के के लिए कुछ भी नहीं।"

साधारणतः धुर्जटि इन जातीय मामलों की बहस में कभी शामिल नहीं होता था। कारण इस तरह के मामलों में व्यक्ति के विचारों को तर्क से बदलना ग्रसम्भव है। बल्कि इससे प्रायः मनमुटाव ही बढ़ता है, और कोई लाभ नहीं होता। फिर भी उसने कह ही दिया, "इंज्वाय क्या वे अकेले ही कर रहे हैं ? क्या लड़कों को इसका हिस्सा नहीं मिला है ?"

शोभन ज़रा भी लज्जित होने के लक्षण न दिखाते हुए बोला, "ग्ररे, यही तो हुग्रा कल। एक फर्स्ट क्लास का टिकट देकर मुझे पंजाब मेल में चढ़ा दिया गया था लेकिन ज़रूरत पड़ने पर दो-एक बार डाइनिंग रूम में जाकर बैठ सकूं, इस तक की व्यवस्था नहीं की थी।"

धुर्जटि ने बात को ज़्यादा बढ़ाने की चेष्टा नहीं की। उठते हुए बोला, "तुम लोग तो अभी बाहर जाओगे। मैं भी चलता हूं।"

"कुछ देर रुक जाओ न ! हम लोग भी तो उसी रास्ते से जाएंगे, तुमको गली की मोड़ पर उतार देंगे।"

धुर्जटि दुविधा में पड़ गया। कुछ सोचकर बोला, "नहीं, रहने दो।"

२

टेलीफोन रखकर हिमांशु गुप्ता फिर अपने उसी कागजों के स्तूप में डूब गए, लेकिन अपना पूरा मन उसमें नहीं लगा सके। वे जब डिक्टेशन देते हैं तो तीन-चार फाइलें उनके सामने हमेशा खुली रहती हैं। विभिन्न विषयों से अलग-अलग तथ्य संग्रह कर मन ही मन इतनी जल्दी एक स्पष्ट और सुसम्बद्ध वक्तव्य तैयार करना सरल काम नहीं है। लेकिन गुप्ता साहब यह काम अनायास ही कर लेते हैं। इस कार्य में उनकी चिन्तन-शक्ति जितनी तेज़ है उतनी ही तीक्ष्ण भी है। सरकारी या गैर-सरकारी ऑफिसों में बड़े-बड़े सीनियर ऑफिसर किसी विषय पर डिक्टेशन देते समय अक्सर स्टेनो से पूछते हैं, "मैं क्या बोल रहा था?" या "आपने क्या लिखा, पढ़िए तो?"

पैरा समाप्त होने पर नया पैरा लिखवाने से पहले उन्हें उसका सूत्र पकड़ा देना पड़ता है। गुप्ता साहब को इसकी ज़रूरत नहीं पड़ती। स्टेनो से कुछ पूछने की बात तो दूर रही, एक बार सिर उठाकर भी नहीं देखते हैं।

कनिका ने प्रायः इसे विस्मय के साथ लक्ष्य किया है। इस दक्ष एवं तेजस्वी व्यक्ति के प्रति उसके मन में बहुत श्रद्धा और भक्ति की भावना थी। ऐसे बॉस के लिए उसके गर्व की सीमा नहीं थी। टिफिन की छुट्टी के समय जब ऑफिस के सहकर्मी बन्धुओं के बीच आपस में 'बॉस' के सम्बन्ध में बातें होती हैं (प्रायः उनके तकियाकलाम या अन्य किसी दुर्बलता को लेकर हंसी-मज़ाक होता है) तब भी वे कनिका के मुंह से बॉस की प्रशंसा को छोड़ और कुछ नहीं सुन पाते। किसी-किसी दिन वह उनके ज्ञान और बुद्धि का परिचय देते समय रीति अनुसार उत्फुल्ल हो उठती थी, जबकि उसके अन्य साथी परस्पर आंखों के इशारे से इसे अन्य रूप में इस्तेमाल करते थे। दो-एक लोग तो इस सम्बन्ध में तीक्ष्ण ताने कसे बिना भी चूकते

नहीं। एक बार एक साथी ने कहा, "देखना, यह भीषण भक्ति कोई और रूप न ले ले!"

"दूसरा रूप ले भी लिया, तो हानि क्या है?" साथ ही साथ जवाव दिया एक हाल ही में भर्ती हुए कम उम्र के चंचल लड़के ने, "उनके पास बुद्धि के साथ-साथ धन भी है। हां, उम्र कुछ ज़्यादा है।"

"तुम हमेशा बे-सिर-पैर की बातें करते हो। तुम्हारे साथ बात करना भी पाप है।" कहकर लालिमा-युक्त चेहरे से उठ पड़ी थी कनिका।

आज टेलीफोन आने के बाद से साहब ज़रा बदल-से गए हैं—यह कनिका की दृष्टि से छिपा नहीं रहा। आज भी कुछ देर पहले तक वे हमेशा की तरह लगातार डिक्टेशन देने में व्यस्त थे लेकिन हठात् उनकी गति धीमी पड़ गई। आज से पहले जिस चीज की उन्हें कभी ज़रूरत नहीं पड़ी, आज उस रास्ते से उन्हें कई बार गुज़रना पड़ रहा था। इससे पहले क्या बोल रहे थे, यह उन्हें कई बार याद दिलाना पड़ा। यह स्पष्ट था कि आज वे कुछ अनमने-से हो गए थे और थक भी गए थे। बोलते-बोलते बीच में बात का प्रसंग टूट जाता था और उसे चेष्टा करके उन्हें याद करना पड़ता था। दो-एक बार आंखें बन्द करके कुछ सोचा, फिर फाइल का फीता बांधते हुए बोले, "आज यहीं तक रहने दो।"

कनिका के नोटबुक लेकर उठते ही कुछ संकोच के साथ बोले, "क्या ये पत्र अभी टाइप करके ला सकती हैं? यदि कुछ असुविधा हो···" कहकर, सामने दीवाल पर टंगी घड़ी की ओर एक दृष्टि डाली। अनजाने ही कनिका की नज़र भी उसपर जा पड़ी। उसने देखा, लम्बा कांटा ५ बजाकर और भी आगे बढ़ गया है। उसने तुरन्त जवाब दिया, "नहीं, नहीं, असुविधा बिलकुल नहीं होगी। मैं अभी कर लाती हूं।"

कुछ आगे बढ़कर फिर वापस पलटकर बोली, "चिट्ठियां घर पहुंचा दूं?"

"नहीं, मैं बैठा हूं। हस्ताक्षर करके जाऊंगा।" कहकर कॉल-बेल दबाई। बेयरा के आते ही बोले, "हाराधन बाबू को बुलाओ।"

हाराधन बाबू डिस्पैच क्लर्क थे। चिट्ठियों को अलग-अलग जगह भेजना ही उनका काम था। करीब दो मिनट बाद ही वे आ गए। जी०

एम० उनसे भी संकोच के साथ बोले, "आपको कुछ देर और बैठना पड़ेगा, हाराधन बाबू। कुछ ज़रूरी चिट्ठियां हैं, डिस्पैच करके जाइएगा।"

"मैं बैठा हूं, सर!"

गुप्ता साहब की रीढ़ की हड्डी में दर्द हो रहा था। और दिनों तो वे लंच के बाद थोड़ा विश्राम कर लेते थे, लेकिन आज ज़रा भी विश्राम नहीं किया। किसी तरह दो ग्रास खाते ही उन्हें बोर्ड की मीटिंग में जाना पड़ा था। फिर लगातार बैठे-बैठे इतनी देर तक काम करना पड़ा था। अब थोड़ा विश्राम लेने के उद्देश्य से उठकर आहिस्ता-आहिस्ता पास के कमरे में ईज़ी-चेयर पर जाकर बैठ गए। इसी 'विश्राम' शब्द के साथ जो अश्लील संकेत कुछ देर पहले मलिना के मुंह से सुनना पड़ा था, हठात् मन में उसी-की ग्लानि बिखर पड़ी। इससे पहले भी स्टेनो के सम्बन्ध में मलिना द्वारा किए गए दो-चार तीखे व्यंग्य उनके कानों में पड़े थे। हिमांशु गुप्ता ने बुरा नहीं माना। लेकिन उन शब्दों में पत्नी की जो नीच भावना निहित थी, उससे वे मन ही मन दुःखित ज़रूर हुए थे। आज की बातें इतनी ओछी थीं कि उनको दुःख नहीं हुआ—लज्जा आई, घृणा से मन भर उठा। अब तक दोनों के बीच फिर भी एक शालीनता का पर्दा था, लेकिन आज वह नहीं रहा। मलिना के विषाक्त आक्रमण का मूल कारण क्या है, वे नहीं जानते। कनिका के साथ उनका इतने दिनों से सम्पर्क है, लेकिन उसके आचरण में ऐसा कुछ भी उन्हें नहीं मिला था, जिससे कि उसके सम्बन्ध में किसी भी तरह की बदनामी हो सकती हो। यह निश्चित ही मलिना की मनगढ़ंत धारणा है। या यह जानते हुए भी कि यह सब झूठ है, उसने जान-बूझकर दोषारोपण किया है, चोट पहुंचाने के लिए ही वार किया है।

लेकिन क्यों? किसलिए मलिना के मन में इतना द्वेष है? कहां है उसकी ज्वाला का मूल? उन्होंने तो उसके रास्ते में कभी ज़रा भी बाधा नहीं पहुंचाई। बल्कि धीरे-धीरे उससे पूर्णतः अपने को दूर हटाते जा रहे थे। सिर्फ घर में एक साथ रहने को छोड़कर अपनी पत्नी के साथ और किसी भी कार्य में साथ नहीं देते थे। दोनों का अलग-अलग सामान है, अलग जगत् है, अलग परिवेश है। खुद के जगत् में स्वच्छन्द एवं बाधा-रहित चलने लायक धन एवं अन्य उपकरणों का भी मलिना के पास अभाव

नहीं है। कई बार अपनी सामर्थ्य से बाहर भी वे मलिना की सब ज़रूरतों को पूरा करते आए हैं। पत्नी के किसी भी काम-काज, कार्य-कलाप एवं गतिविधि के सम्बन्ध में मन-ही-मन समर्थन न करने पर भी बाहर से कभी उसका विरोध नहीं किया बल्कि जब भी जिस चीज़ या सहायता की उसे ज़रूरत पड़ी, अपनी सामर्थ्य के अनुसार उसे पूरा करने की चेष्टा की है। फिर भी उसकी शिकायतों का अन्त क्यों नहीं होता ? और क्या चाहती है वह ?

सिर्फ पत्नी ही नहीं, लड़के के असन्तोष का भी अन्त नहीं है। हिरन उनका एकमात्र लड़का है। वह उनके जीवन में कितना महत्त्व रखता है, यह वे ही जानते हैं। हालांकि बातचीत में या व्यवहार-आचरण में स्नेह का प्रकाश उन्होंने कभी नहीं किया। यह उन्हें नहीं आता। बचपन से ही वे गंभीर-स्वभाव के हैं। इसलिए बाहर से बहुत-से लोग उन्हें गलत समझ बैठते हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन जब अपनों की दृष्टि भी आवरण में अटकी रहती है, गहराई तक नहीं पहुंचती, तो अपने-पराये में अन्तर ही क्या रह जाता है ? किन्तु वास्तव में अपने लोग बहुत कम ऐसे होते हैं जो गहराई तक पहुंच सकें। कभी इसके लिए उनको कष्ट होता था लेकिन अब ऐसा नहीं होता। इस संसार में हर परिस्थिति के लिए उन्होंने अपने को तैयार कर लिया था।

फिर भी लड़के के लिए कभी-कभी हृदय बेचैन हो उठता था। वह बहुत दूर चला गया था। कभी-कभी दो-एक मामूली चिट्ठी-पत्री को छोड़ उससे और किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं था। वह भी जब वे लिखते थे, तब उसके उत्तर में आती थी। उसका चला जाना यदि स्वाभाविक रूप में होता तो हिमांशु को बिलकुल भी दुःख नहीं होता, हालांकि अपने इकलौते लड़के को वे अपने पास रखकर आदमी बनाना चाहते थे और इसी तरह की उन्होंने सारी व्यवस्था भी की थी। इसके बावजूद, अपने वयस्क पुत्र की विदेश-यात्रा के वे विरोधी नहीं थे। वहां जाकर बृहत्तर परिवेश के बीच उसकी शक्ति और सामर्थ्य का स्वच्छन्द विकास हो, उनकी केवल यही इच्छा थी। लेकिन हिरन इस उद्देश्य से नहीं गया। किसी तरह एक नौकरी का इन्तजाम करके हठात् एक दिन सूडान चला गया। अपनी

इच्छा से नहीं, भविष्य में उन्नति के उद्देश्य से भी नहीं, बल्कि पिता के व्यवहार से वह देश छोड़ने पर बाध्य हुआ है—वह इसी बात का प्रचार करके गया है और अब भी कर रहा है।

हिरन सिविल इंजीनियर है। बचपन से ही पढ़ने-लिखने में उसका मन नहीं लगता था। खेलने-कूदने का बहुत शौकीन था। दिन भर खेलने में ही रहता। परीक्षा में हर वर्ष उत्तीर्ण नहीं होता था। इसके लिए उसके मन में कोई विशेष लज्जा या दुःख भी नहीं था। जैसे पास होना तो साधारण लड़कों का काम हो। वह असाधारण है, पास न होना ही उसकी विशेषता है, यही उसकी हार्दिक इच्छा है, मानो इसके द्वारा वह दिखा देना चाहता है कि ढेर सारी कंठस्थ की हुई चीज़ें परीक्षा की कापी में उगलकर प्रचलित रास्ते पर वह चलना नहीं चाहता, उसकी इच्छा होने पर यह तो मामूली चीज़ है और पास-नम्बर लाना तो उसके लिए बायें हाथ का खेल है। इसकी बजाय उसने अपना मन लगाया है और योग्यता भी दिखाई है—फुटबाल के मैदान में, बैडमिंटन के कोर्ट में, वार्षिक स्पोर्ट्स के अवसर पर। अपने स्कूल की तरफ से शील्ड जीता था, ढेर सारे कप-मेडल लेकर घर लौटा था। पास तो सभी होते हैं, लेकिन यह सब कितने लोग कर सकते हैं।

लड़के के इस अभिप्राय के पीछे थोड़ा-सा प्रश्रय मां का भी था। लेकिन हिमांशु दृढ़तापूर्वक शुरू से आखिर तक इसका विरोध करते रहे। हिमांशु खुद एक तेज़ छात्र थे। अभाव और गरीबी के कारण अनेक प्रकार के कष्ट झेलते हुए उन्होंने लिखना-पढ़ना सीखा था। फिर भी प्रत्येक परीक्षा में अपनी योग्यता का परिचय दिया था। खेल-कूद या अन्य चीज़ों में कितनी भी बहादुरी क्यों न दिखाई हो, लड़के का फेल हो जाना वे किसी भी मूल्य पर बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। उन्होंने शुरू से लड़के पर इतना कठोर शासन किया, इसीलिए बचपन से ही हिरन अपने पिता पर खुश नहीं था। मलिना भी हमेशा परेशान रहती थी। सिर्फ इसी एक विषय में हिमांशु अटल थे। जैसे खेल-कूद इत्यादि चीज़ों में उन्होंने बाधा नहीं दी थी, उसी तरह पढ़ने-लिखने में ये चीज़ें बाधक न बनें, इस ओर भी वे कड़ी नज़र रखते थे।

पहले तो हिरन की इंजीनियरिंग कॉलेज में प्रवेश लेने की इच्छा नहीं

थी। वह आई० एस-सी० के बाद बी० ए० पढ़ना चाहता था। मां का मत भी लड़के के मतानुसार ही था। लेकिन पिता जब बार-बार लगे समझाने और उन्होंने दोनों लाइनों के भविष्य का एक तुलनात्मक चित्र आंक दिया तो एक तरह से निराश होकर ही वह राज़ी हुआ था। उसके बाद बहुत दिनों तक मां-बेटे के सुलगते असन्तोष का ताप हिमांशु को सहना पड़ा था। आज भी उन्हें वह दिन अच्छी तरह याद है, जब कार्पेण्ट्री-क्लास में रंदा चलाने के फलस्वरूप हाथ में कुछ ज़ख्म ही लेकर लड़का अगले रविवार को मां से मिलने आया था, तो मलिना लड़के का वही हाथ पकड़े खींचते-खींचते पति के कमरे में ले जाकर फूट पड़ी थी, "एक बार आंखें मलकर देखो, क्या हुआ है ?" हिमांशु ने कोई जबाव नहीं दिया था, सिर्फ धीरे से मुस्करा दिए थे। मलिना आवेश में आकर क्या-क्या बोली थी, पूरा याद नहीं है। अन्त में लड़के का हाथ पकड़कर कमरे से बाहर निकलते समय उनसे कह गई थी, "अब यदि इसे मैं शिवपुर के उस कॉलेज में जाने दूं, तो मेरा नाम बदल देना।"

हिमांशु ने किसी बात का जवाब नहीं दिया। कुछ देर बाद लड़के को बुलाकर अपने हाथ से मलहम लगा दी थी। उसकी नज़रें झुकी हुई थीं, शायद मां का काण्ड देखकर कुछ लज्जित हो गया था। दूसरे दिन यथासमय वह शिवपुर के लिए रवाना हो गया था। कुछ-एक वर्ष बाद, जिस दिन उसके पास होने की खबर मिली, तो सबसे पहले मलिना ही उनके कमरे में दौड़कर आई थी और बहुत ही गर्व के साथ सिर उठाकर बोली थी, "क्यों, देख लिया तो! किस तरह एक बार में ही इंजीनियर होकर निकला है। तुम तो विश्वास ही नहीं करना चाहते थे। बचपन से ही बेचारे के पीछे पड़े हुए हो।"

हिमांशु उस दिन भी कुछ नहीं बोले। मृदु हंसी हंसकर अपना दोष स्वीकार कर लिया था।

अब फिर मां-बेटे में मतभेद दिखाई दिया। लड़के की इच्छा कुछ वर्ष विलायत घूमकर आने की थी। दो-अढ़ाई सौ रुपये की नौकरी उसे पसन्द नहीं थी। इससे तो वहां की डिग्री लेकर आते ही तीन गुना दाम बढ़ जाएगा। यह बात झूठ भी नहीं थी। हिरन ने उसके दो-चार उदाहरण भी दिए थे।

मां को समझाने में उसे असुविधा नहीं हुई। लेकिन पिता ने अनुमति नहीं दी, दे नहीं सके। क्योंकि एक वर्ष पहले ही उन्होंने लड़की की शादी की थी। उसका असर अभी तक नहीं मिटा था। मतलब उसका पिछला हिसाव अभी तक चल रहा है एवं कितने दिन और चलेगा, वे नहीं जानते थे। उनके समाज में कन्या का विवाह सिर्फ एक रात्रि की विपत्ति नहीं है, पिता के खून के नित्य निकास का द्वार है। व्यापारी की दृष्टि से देखने पर, यह एक तरह का संयुक्त प्रतिष्ठान है, वर-वधू भी इसके भागीदार हैं, लेकिन जहां पिता की लायबिलिटी अनलिमिटेड है, वहां वर-वधू की निल। धर्म-कर्म की दृष्टि से देखने पर, यह एक ऐसा यज्ञ है, जिसके समाप्त होने पर भी इसकी आहुति चलती रहती है और पूर्णाहुति का लग्न किसी दिन नहीं आता।

विलायत भेजने के सिलसिले में आर्थिक असुविधा के अलावा असहमति का एक कारण और भी था। रुपये के सद्‌व्यवहार के सम्वन्ध में भी हिमांशु बाबू पूरी तरह निश्चित नहीं हो सके थे। लड़के के मेरुदण्ड पर उन्हें पूरा भरोसा नहीं था। उसे सीधा रखने के लिए निरन्तर उन्हें उसके पीछे लगा रहना पड़ता था। ऐसा नहीं होता तो शिवपुर के कॉलेज का वेड़ा पार होना सम्भव होता या नहीं, इसमें भी सन्देह था। अब उनकी पहुंच के बाहर इतनी दूर जाकर खुद के प्रयत्नों से इतना बड़ा घेरा लांघकर वापस सही-सलामत घर लौट आएगा, यह विश्वास करते हुए भी वे मन ही मन डर रहे थे। और फिर, दुर्बल मेरुदण्ड के डुवो देने के लायक प्रलोभनों की वहां कमी नहीं है। अच्छी चीज़ों की अपेक्षा बेकार चीज़ों की ओर ही लड़के का बहुत दिनों से आकर्षण था। इन्हीं अनेक प्रकार की बातों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने लड़के की विदेश-यात्रा के प्रस्ताव को अस्वीकृत न करने पर भी उसे फिलहाल स्थगित रखा। इस बीच हिरन ने अपनी निकटतम विदाई की खुशखबरी दोस्तों में फैलानी शुरू कर दी थी। अब उनके सामने अपना मुंह दिखाना उसके लिए मुश्किल हो गया। गुस्सा, खेद और निराशा के मारे उसने अपने पिता से बोलना तक बन्द कर दिया। मलिना भी उठते-बैठते हर समय पति को कोसती रहती।

कुछ दिनों पश्चात् हिमांशु के ऑफिस में ही कन्स्ट्रक्शन सेक्शन में एक असिस्टैण्ट इंजीनियर की जगह खाली हो गई। उन्हें कुछ कहना नहीं

पड़ा; वाद-विवाद के पश्चात् बोर्ड ने हिरन को ही लेने का निश्चय किया। बिना दरख्वास्त एवं इंटरव्यू के ही एक दिन अचानक उसके पास नियुक्ति-पत्र आ पहुंचा। मगर वह खुश नहीं हुआ। पिता को मैनेजर के रूप में देखना शायद किसी लड़के को अच्छा नहीं लगता। मलिना तो स्पष्टतः आपत्ति कर बैठी। बाप-बेटे के बीच संभावित मालिक-नौकर के सम्बन्ध में बात न चलाकर वह घुमा-फिराकर बोली, "हीरू के नौकरी न करने से क्या घर नहीं चलेगा ? अभी तो यह कालेज की पढ़ाई पूरी करके निकला है। कुछ दिन विश्राम कर लेता तो क्या कुछ हानि थी ?"

हिमांशु ने समझाना चाहा, "इंजीनियरों को किताबी विद्या का कोई महत्त्व नहीं है; खास चीज़ है व्यावहारिक अनुभव और कार्य। इसमें जितनी देर होगी, उतनी ही ज़्यादा उसमें ज़ंग लगेगी।" वे एक बात और बोलना चाहते थे। लेकिन बोले नहीं, कि इस उम्र में लड़कों का मन बहुत चंचल होता है, यदि शुरू से उन्हें काम में न लगाया जाए तो बिगड़ने का बहुत डर रहता है। बाद में उन्हें गुस्से से या अन्य किसी भी तरीके से नहीं संभाला जा सकता। अपने लड़के को वे जहां तक समझे थे, इसका भय उन्हें पहले से ही था। किन्तु फिलहाल इस बात को उन्होंने मन में ही रक्खा। तब मलिना ने अपनी असली बात कही, "यदि नौकरी पर लगाना ही है तो और कहीं नहीं लगाया जा सकता क्या ?"

"क्यों, यहां क्या दोष है ?"

"वह कह रहा था, और बात भी एकदम झूठ नहीं है कि···"

पत्नी को दुविधा में देखकर अपनी बुद्धि के अनुसार उन्होंने इसका अनुमान लगा लिया। मीठी हंसी हंसकर बोले, "इसका कोई डर नहीं है, कारण वह जहां काम करेगा, वहां मेरे संसर्ग में उसे आना ही नहीं पड़ेगा। प्रत्यक्ष आमना-सामना होने की तो सम्भावना ही नहीं है; हां, जब तक कोई बड़ी गड़बड़ी न कर बैठे। और मैं आशा करता हूं कि वैसी कोई बात नहीं होगी।"

उनके इस आशा करने की गहराई में शायद कोई आशंका छुपी हुई थी और वह आशंका झूठी नहीं थी। इसके छोटे-मोटे लक्षण शुरू से ही दिखाई देने लगे।

उस समय हिरन की नौकरी को करीब एक महीने से कुछ ही ज़्यादा हुआ था। एक दिन किसी कार्यवश हिमांशु को सुबह ही चेयरमैन के घर जाना पड़ा था। वापस घर लौटकर स्नानादि से निवृत्त हो वे आफिस जाने के लिए तैयार हो रहे थे कि हठात् उन्होंने देखा, हीरू अपने कमरे से बाहर निकल रहा है। उस समय करीब एक बजा था। आश्चर्य के साथ उन्होंने पूछा, "आफिस नहीं गए ?"

"आफिस ही तो जा रहा हूं।"

"इतनी देरी से !"

हिरन ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। द्रुत गति से सीढ़ियों से नीचे उतर गया। एक तल्ले से मलिना का स्वर सुनाई पड़ा, "हड़बड़-हड़बड़ करके कहां जा रहे हो ? वे भी तो अभी बाहर जाएंगे। उनके साथ ही चले जाना न ! ट्राम के भीड़-भड़क्के में धक्के खाने की क्या ज़रूरत है ?"

लड़के का कोई उत्तर सुनाई नहीं दिया। करीब पांच मिनट बाद गाड़ी में बैठते समय हिमांशु ने चारों ओर नज़र दौड़ाई लेकिन लड़का दिखाई नहीं दिया। ड्राइवर खुद ही बोला, "छोटे बाबू तो चले गए हैं, साब !"

आफिस पहुंचने के बाद ज़रा फुर्सत मिलते ही चीफ इंजीनियर को बुला भेजा। अन्य दो-एक काम की बातें करने के पश्चात् बोले, "हिरन काम-काज कैसा करता है ?"

"अच्छा ही तो करता है।"

"आफिस ठीक समय पर आता है या नहीं ?"

"बीच-बीच में एक-आध दिन देरी करके आता है। अभी बिलकुल नया ही है न। थोड़ा-सा अभ्यस्त हो जाएगा तो खुद ही सुधर जाएगा।"

"लेकिन, मैं सोचता हूं, समय की प्रतीक्षा न कर, उसे सुधारने का भार मुझे अपने हाथों में लेना पड़ेगा। आप उसकी अटेंडेन्स पर ज़रा कड़ी नज़र रखिएगा, यही मेरी इच्छा है। काम-काज में किसी भी तरह की शिथिलता देखें तो प्रॉपर ऐक्शन लेने में संकोच मत करिएगा।"

दूसरे दिन शाम के समय हिमांशु अपने सोने के कमरे के बरामदे में ईज़ी-चेयर पर बैठे एक पुस्तक पढ़ रहे थे। हठात् पत्नी को आते देख आश्चर्यचकित हो गए। इस समय मलिना कभी घर में नहीं रहती। और

रहती भी है तो इस तरफ कभी नहीं आती। उन्होंने सोचा, ज़रूर कोई आवश्यक कार्य है, या शायद कोई अप्रिय बात है। उनके किताब के बीच अंगुली रख सीधे होकर बैठते ही मलिना बोली, "तुम तो रोज़ साढ़े आठ बजे ही चले जाते हो। यदि आफिस पहुंचते ही गाड़ी भेज दो तो क्या यहां साढ़े नौ बजे तक नहीं पहुंच सकती ?"

"हां, पहुंच तो सकती है। लेकिन बात क्या है ?"

"तुम्हारे चीफ इंजीनियर साहब ने हुकुम दिया है कि आफिस प्रत्येक व्यक्ति को ठीक दस बजे हाज़िरी देनी पड़ेगी।"

उसके बोलने के ढंग में जो तीखा व्यंग्य था, वह छिपा नहीं रह सका। फिर भी हिमांशु उसकी उपेक्षा करते हुए बोले, "यदि ऐसा कहा है तो ठीक ही कहा है। यही तो नियम है।"

"हुं, जहां इतने लोग काम करते हैं, वहां यदि दो-एक आदमी ज़रा देर से भी पहुंचेंगे तो कम्पनी नीलाम तो नहीं हो जाएगी।"

"नियम सबके लिए एक ही होता है। किसी एक के लिए अलग नियम नहीं बनाए जाते। हिरन से कहो, उसे भी ठीक समय पर आफिस पहुंचना पड़ेगा।"

"सो तो मैं समझ गई।" ज़रा क्रोधित होती हुई बोली मलिना, "किन्तु ट्राम-बस की इतनी ज़बर्दस्त भीड़ में धक्के खाते हुए वह जाएगा कैसे ?"

"जैसे सब लोग जाते हैं।"

"उसके बदले यदि गाड़ी आकर ले जाए, तो तुम्हें कोई असुविधा होगी क्या ?"

"असुविधा तो कुछ नहीं होगी, फिर भी, इसमें कुछ और भी तो सोचने की बात हो सकती है।"

"क्या बात है, मैं भी तो सुनूं। ज़रा तेल ज़्यादा जलेगा, यही न ? उसके रुपये मैं दे दूंगी।"

"तेल की कोई बात नहीं है, हालांकि इस पोइंट को भी बाद देना उचित नहीं है। प्रत्येक मनुष्य को उसकी स्थिति के अनुसार जितनी चादर होती है, उतना ही पैर फैलाना पड़ता है।"

"अपनी स्थिति से तुम्हारा क्या आशय है ? तुम कहना क्या चाहते हो ? क्या तुम्हारी गाड़ी उसकी नहीं है··· वो उसमें नहीं चढ़ सकता ?"

"ज़रूर चढ़ सकता है। लेकिन ग्राफिस जाते वक्त नहीं। यहां देखना पड़ेगा कि उसकी आफिशियल पोज़ीशन क्या है, कितनी तनख्वाह है, गाड़ी में आफिस जाने लायक ग्रार्थिक योग्यता है या नहीं ? पारिवारिक नहीं, व्यक्तिगत योग्यता। यदि ऐसा नहीं होता तो हमेशा वह पिता के ऊपर ही निर्भर रहेगा, स्वतन्त्र रूप से कभी अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो सकेगा।"

मलिना मुंह फुलाए गुमसुम बैठी रही। हिमांशु ने उसकी ग्रोर देखकर कहा, "भीड़ का कष्ट मैं जानता हूं। लेकिन उसकी भी एक कीमत है। हो सकता है, यही कष्ट उसमें जल्दी ऊंचा उठने का उत्साह ला दे। यों ही उसमें उत्साह की कमी है। शुरू से यदि गाड़ी में चढ़ना शुरू कर देगा तो वह उत्साह कभी नहीं ग्राएगा।"

उस दिन ग्रौर कोई बात नहीं हुई। लेकिन पूरी बातें मलिना के मन में कांटे की तरह चुभी रहीं। वह ग्रपने पति को जानती है। कितने ही ग्रनोखे मत और ग्रादर्शों से वे इस तरह चिपके हुए हैं कि कोई भी शक्ति उन्हें तिनके बराबर भी नहीं हिला सकती। यही एकमात्र लड़का है। उसपर उनकी स्नेह-ममता की कमी नहीं है। लड़के का कष्ट, ग्रसुविधा, क्षोभ और ग्रभिमान उन्हें स्पर्श नहीं करता, यह बात भीं नहीं है लेकिन जहां उसकी अच्छाई-बुराई एवं भविष्य का प्रश्न उठता है, वहां और सब चीज़ों को तुच्छ कहकर उड़ा देते हैं। लड़के की भलाई (जिसकी परिभाषा के सम्बन्ध में उनका खुद का मत ही सर्वोपरि है) के ग्रागे वे खुद लड़के या उसकी मां या ग्रपनी निज की इच्छा-अनिच्छा को कोई महत्त्व नहीं देते। उसे मनुष्य बनने के पथ पर बढ़ाना पड़ेगा—यही उनका एकमात्र लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति में वे अपनों की अप्रियता की भी चिन्ता नहीं करते। उन्हें दुःख देने में भी संकोच नहीं करते। इस जगह वे आश्चर्यचकित रूप से ममता-रहित एवं कठोर हैं।

मलिना ग्रपने पति का इतना ग्रधिक ग्रात्म-विश्वास ग्रौर आदर्श

सहन नहीं कर पाती थी। पग-पग पर संघर्ष होता था, लेकिन अन्त में उसे अपनी हार माननी ही पड़ती। आघात, अपमान, अभिमान और असहयोग— किसी भी तरह इस अद्‌भुत मनुष्य को नहीं हिलाया जा सकता। यह सोचकर चुप रहना भी तो सम्भव नहीं है। दिन-पर-दिन लड़के के चेहरे की तरफ देखकर, विशेषकर शाम के समय जब वह थका-मांदा घर लौटता है, उस समय स्थिर रहना मलिना के लिए सचमुच कठिन हो जाता है। जिस दिन लौटने में ज़्यादा देर हो जाती, दरवाज़े पर खड़ी रहती। कभी-कभी बोलती, "एक टैक्सी करके भी तो आ सकता था।"

"मिले तब तो ?" कहकर हिरन गम्भीर चेहरे से कमरे में जा घुसता। उसके स्याह चेहरे पर जो कष्ट और असन्तोष का भाव रहता, वह मां की आंखों से छिपा नहीं रह पाता जबकि वास्तव में समस्या कहीं नहीं है। पति के मुंह की बात थी, इच्छा करते ही क्षण-भर में सब बातों का निवारण हो सकता है।

कुछ दिन बाद सुबह के समय जब हिमांशु अपने छोटे आफिस-कमरे में बैठे थे तब मलिना एक और प्रस्ताव लेकर आ उपस्थित हुई और किसी भी तरह की भूमिका बांधे बिना ही बोली, "कल से हिरन तुम्हारे साथ जाएगा।"

हिमांशु एकाग्र मन से फाइल में नोट लिख रहे थे। चट् से 'हां-ना' कुछ नहीं बोल सके। विषयान्तर में आते थोड़ा समय लग गया। इसी बीच मलिना तीखे स्वर में बोली, "लड़के को आफिस तक साथ लेकर जाने में तुम्हें कोई असुविधा होती हो तो उसे कुछ पहले ही उतार दिया करो। उतनी-सी दूर वह पैदल चला जाएगा।"

हिमांशु उस तीव्र प्रहार का विचार किए बिना ही बोले, "लेकिन मैं तो साढ़े आठ बजे जाता हूं।"

"ओ-हो, उसी समय जाना। इसे छोड़ और उपाय भी क्या है ?"

"खाना किस समय खाएगा ?"

"वह मैं टिफिन-कैरियर में जग्गा के हाथ भेज दूंगी। कभी तुम्हारा खाना भी तो घर से जाता था। फिर हठात् बन्द कर दिया। किस कारण से, यह तो तुम्हीं जानते हो।"

हिमांशु कुछ देर के लिए ज़रा अनमने-से हो गए। हां, कभी उनका खाना भी घर से ही आता था। मलिना खुद अपने हाथों से सजाकर भेजती थी। इसके बाद यह काम धीरे-धीरे रसोइये के हाथों में चला गया। तब भी समयानुसार भेजने का काम गृहिणी ही करती थी और कभी-कभी निरीक्षण के नाम पर रसोइये पर थोड़ा-सा रोब जमा लेती थी। धीरे-धीरे वह भी छोड़ दिया। पुराना रसोइया जब तक था, खाद्य वस्तु की अवस्था जो भी हो, भेजने की व्यवस्था मोटा-मोटी चालू थी। एक दिन किसी बात को लेकर गृहिणी ने उसे बरखास्त कर दिया। जो नया रखा गया, उसके लिए इतना फालतू काम करना एक समस्या हो गई। इसे लेकर रोज़ चख-चख होती थी। कभी टिफिन-कैरियर की कटोरियां नहीं धोई जातीं। कभी यह चीज़ नहीं रहती तो कभी वह चीज़ नहीं रहती। कभी साढ़े बारह बजे खाना आ जाता, कभी दो बजे। इसी तरह एक दिन वह असमय खाना लेकर आया। हिमांशु ने विलम्ब का कारण जानना चाहा तो उत्तर में वह मालिक से ही उल्टा प्रश्न कर बैठा, यदि मालकिन उसके सिर पर एक साथ दो कामों का भार डाल दें तो वह समयानुसार कैसे आएगा? दूसरे काम पर उसने खुद ही प्रकाश डाला—भवानीपुर में शोभनबाबू के पास एक चिट्ठी पहुंचानी थी—साथ ही साथ यह भी बताया कि इसी काम को पहले करने के लिए मालकिन ने बार-बार कहा था।

अगले दिन से हिमांशु बाबू ने ऑफिस में ही लंच की व्यवस्था कर ली थी। होटल मार्का लंच में उनकी रुचि नहीं थी। पाकस्थली भी इसके लिए प्रस्तुत नहीं थी। मालिक की इच्छानुसार पावरोटी, मक्खन, अण्डे और कुछ उबाली हुई सब्जियां और फल इत्यादि मिलाकर एक नये लंच की व्यवस्था का भार खास बेयरे गंगाधर साहू ने लिया था।

एक ऐसे साधारण प्रस्ताव से पति के चेहरे पर चिन्ता की झलक देखकर मलिना के धैर्य को आघात पहुंचा। बोली, "क्या सोचते हो? इसमें इतनी चिन्ता करने की क्या बात है?"

"सोचता हूं, हिरन का कोई अलग कमरा तो है नहीं। और भी कई लोगों के आसपास टेबिल पर बैठना पड़ता है। वहां खाना खाने में क्या उसे

सुविधा होगी ?"

"वहां क्यों खाएगा ? तुम्हारे चेम्बर में जाकर खा आएगा। वहां तो पूरी व्यवस्था है ही। ज़्यादा से ज्यादा एक कुर्सी की और ज़रूरत पड़ेगी।"

हिमांशु ने फाइल पर दृष्टि रखते हुए ही कुछ सोचा। फिर सिर झुकाकर बोले, "नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।"

"क्यों ? तुम्हारा तात्पर्य है, इससे तुम्हारी हानि होगी ?" श्लेषयुक्त ताना कसती हुई बोली मलिना।

हिमांशु ने कोई जवाब नहीं दिया और अपने काम में लग गए। मलिना का कंठ-स्वर तीव्र हुआ, "तुम शायद यह भूल रहे हो कि तुम्हारे बहुत नीचे काम करने पर भी वह तुम्हारा लड़का ही है।"

"भूला नहीं हूं, इसीलिए तुम्हारी बात पर राज़ी नहीं हो पा रहा हूं।" बिना सिर उठाए शांत स्वर में बोले हिमांशु, "उसके लिए भी यह भूलना उचित होगा कि वह जी० एम० का लड़का है—यह उसका परिचय नहीं है। काम-काज में, उसके व्यवहार में, यह भावना जितनी कम आएगी, उतना ही अच्छा है।"

मलिना इसके उत्तर में फिर कुछ बोलने जा रही थी कि टेलीफोन की घंटी बज उठी, इसलिए जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाती हुई आंधी की तरह कमरे से बाहर चली गई।

एक कोमल कंठ का मृदु खांसी का स्वर कानों में पड़ते ही गुप्ता साहब अतीत के स्मृति-लोक में-से वर्तमान के वास्तविक लोक में लौट आए। दरवाज़े के परदे के पीछे परिचित साड़ी का आंचल दिखाई पड़ा। भीतर से ही ज़रा ऊंचे स्वर में बोले, "आइए।" तुरन्त बाद खड़े होते हुए आफिस के बड़े कमरे की ओर पैर बढ़ाकर बोले, "रहने दो, मैं ही आ रहा हूं।" छुट्टी के बाद, इस स्वल्पालोकित विश्राम-कक्ष के एकान्त में इस तरुण युवती का एकाकी सान्निध्य उन्हें रुकावट-सा प्रतीत हुआ। हो सकता है, उसे भी अच्छा न लगता हो। आफिस-कक्ष की तेज़ रोशनी एवं विस्तृत परिवेश में अन्य किसी की उपस्थिति न रहने पर भी उसका चेहरा स्वच्छ रहता था। बेचैनी और घबराहट नहीं रहती थी।

बहुत-सी चिट्ठियां थीं। आगे बढ़कर कनिका एक-एक चिट्ठी पकड़ाने लगी। प्रत्येक की शुरुआत और आखिर में पढ़कर, जहां सामान्य-से संशोधन की ज़रूरत थी, उसी समय ठीक करके हस्ताक्षर करते गए। उसके बाद फाइल के कागज़ समेटते-समेटते बोले, "थैंक यू। अच्छा, अब आप जाइए। बहुत देर से रोक रखा है आपको। घर लौटने में रात हो जाएगी।"

"नहीं, नहीं", कहकर, सिर झुकाकर—उसे कोई असुविधा नहीं हुई—इसी तरह का एक अस्पष्ट-सा मृदु वाक्य बोलकर प्रणाम करके, कनिका कमरे से बाहर चली गई।

गुप्ता साहब ने तत्काल घंटी बजाकर बेयरे को बुलाया और फाइल हाराधन बाबू के पास पहुंचा देने का निर्देश देकर बोले, "तुम लोग भी घर चले जाओ।"

बेयरे को खड़े-खड़े जिज्ञासु दृष्टि से अपनी ओर देखते पाकर बोले, "मुझे कुछ देर लगेगी।"

खास कमरे में लौटकर गुप्ता साहब फिर आराम कुर्सी पर बैठ गए। स्टेनो एवं बेयरे को विदा देने का सूत्र पकड़कर अपने-आप उच्चरित 'घर' की बात उनके मन में झंकार कर उठी। विशेषकर कनिका के चेहरे पर जो चमक थी, वह उनकी दृष्टि से छिपी नहीं रह सकी। कार्य के पश्चात् दिन की समाप्ति पर थके हुए घर लौटने का आनन्द! उसके घर में कौन-कौन है, वे ठीक से नहीं जानते। लड़की कुंआरी है एवं बाप नहीं है, नौकरी देते समय यहीं तक जान पाए थे। शायद विधवा मां है और दो-चार छोटे भाई-बहन हैं। वे सभी उसे देरी होते देख चिन्तित हो उठते होंगे। सबके चेहरे पर प्रतीक्षा की छाया रहती होगी। जब वह घर पहुंचेगी तब सबको शान्ति मिलेगी। नौकरी में थोड़ा-सा मिलता है। इन दुर्दिनों में अच्छी तरह रहना मुश्किल है। शायद सभी मिलकर किसी प्रकार एक कमरे में सिर छुपाकर रहते हैं। पास ही एक छोटा-सा बरामदा है, एक कोने में छोटा-सा रसोई-घर है। फिर भी वह उसका 'घर' है। वहां उसके स्वजन उन्मुक्त हृदय लेकर उसीकी प्रतीक्षा में बैठे हैं। इससे अधिक दुर्लभ सम्पत्ति और क्या है मनुष्य के जीवन में!

घूम-फिरकर फिर खुद के जीवन का ध्यान आया। यह लड़की एवं

इसीकी तरह हज़ारों अनेक उम्र के नर-नारी, प्रतिदिन का काम समाप्त होते ही ट्राम, बस, रेल, मोटर में या पैदल चलकर जल्दी-जल्दी घर पहुंचना चाहते हैं। वे भी उनमें-से ही एक हैं। उसी विशाल जुलूस के एक अंग। फिर भी उन लोगों से उनकी वात कितनी अलग है। संध्या समय थके-मांदे जब वे लौटते हैं—हां, उनका भी घर तो है ही, और उन लोगों में अनेकों से वहुत बड़ा है, लेकिन उनके घर के द्वार पर उनकी प्रतीक्षा में उत्सुक नयन बिछाए कोई नहीं बैठा रहता।

छोटे-बड़े अनेक दृश्य पार होने के पश्चात, कुछ देर पहले ऑफिस के कमरे में अधूरे छूटे हुए उसी सूत्र में लौट आए मिस्टर गुप्ता। हिरन के चले जाने से पहले वाले दिनों में। खुद के उठाए हुए कदम को एक बार फिर अनेक तरह से नापकर, वज़न करके परखने की चेष्टा की। कहीं भी कोई भूल प्रतीत नहीं हुई। आफिस का नियम, अनुशासन, शृंखला और हित को ध्यान में रखते हुए जो रास्ता उस दिन उन्होंने अपनाया था, उसे छोड़ कोई दूसरा रास्ता नहीं था। सर्वोच्च पदाधिकारी का दायित्व सिर पर लेकर उससे मुकर कैसे सकते हैं ?

चीफ इंजीनियर गोपाल बोस के साथ हिरन का सम्पर्क शुरू से ही मधुर नहीं था। इसके लिए दोनों पक्ष ही अल्पाधिक दोषी हैं। हिरन भूल नहीं सका कि वह जनरल मैनेजर का लड़का है और चीफ ने भी यह भूलने नहीं दिया। वह थोड़ी कड़ाई से समझा रहा था कि पिता के पद-गौरव का ध्यान रखते हुए वह किसी विशेष सुविधा-सुयोग का अधिकार न मांगे। इसके फलस्वरूप तुच्छ विषयों में मतान्तर और छोटी-मोटी बातों को लेकर उनका प्रायः झगड़ा चलता रहता। छोटे एवं बड़े के बीच अन्तर सदा से रहता आया है। बड़े को वहुत सारी प्राथमिक सुविधाएं मिली हुई रहती हैं। डिसिप्लिन नामक चीज़ भी उन्हींके हाथ में रहती है। इसके अलावा, छोटे-वड़े काम-काज के गुण-दोष एवं त्रुटियों के विचार का भार भी उन्हींके ऊपर रहता है। इसलिए जहां विचार और न्याय छोटे के पक्ष में रहता है वहां भी कभी-कभी छोटे को ही हार माननी पड़ती है। यदि कागज़-कलम की कार्यवाही द्वारा जीत हो भी जाए, तो वह सामयिक और नहीं के वरावर ही होती है। वह सिर्फ अन्य दस पराजयों का रास्ता साफ

कर देती है—यहीं तक।

हिरन के साथ भी उस नियम का व्यतिक्रम नहीं हुआ। हो सकता है, एकाध काम में देखा गया हो कि वह जो कहता है ठीक है, या उसके काम में कोई त्रुटि नहीं है। लेकिन अन्यत्र क्रमागत त्रुटियां दिखाई देने लगीं। अभी तक वे संख्या में ज़्यादा होने पर भी आकार में बड़ी नहीं थीं, अर्थात् चीफ इंजीनियर के इलाके से बाहर नहीं गई थीं। लेकिन इस बार एक बड़ी गलती की शिकायत आई और उसके साथ स्वेच्छाकृत लापरवाही और कम्पनी की आर्थिक क्षति का अपराध भी। नियमानुसार रिपोर्ट जनरल मैनेजर के पास गई।

केस बहुत सरल नहीं था। कलकत्ते से कुछ दूर कम्पनी का एक गोदाम बन रहा था। उसकी तहकीकात का भार हिरन के ऊपर था। सबसे पहला नम्बर ईंटों की जांच का था। कण्ट्रैक्टर के पास जो विशद विवरण रहता है (उनकी भाषा में स्पेसिफिकेशन) इसमें सब चीज़ों का पूरा उल्लेख था एवं ठेकेदार ने भी उसीके अनुसार दाम लगाया था। बहुत-सा काम हो जाने के पश्चात् एक चिट्ठी के मार्फत चीफ इंजीनियर को खबर मिली कि जो ईंटें लगाई गई हैं उनमें ज़्यादातर दो नम्बर की हैं एवं मसाले में भी मिलावट है अर्थात् बालू और सीमेन्ट का अनुपात शर्त के अनुसार नहीं दिया गया है। घटना-स्थल पर तहक़ीकात के लिए पहुंचने के बाद सबसे पहले चीफ इंजीनियर ने खफा होकर पलस्तरों की जांच की। बहुत-सी ईंटें दो नम्बर की पाई गईं। तब पूरी दीवार को तोड़ देने का आदेश दिया। मालूम पड़ा, कुल मिलाकर प्राय: चालीस भाग मिलावट थी। मसाले में भी बालू का अनुपात अधिक था।

हिरन से पूछे जाने पर उसने जवाब दिया कि हर समय 'साइट' पर उपस्थित रहना उसके लिए सम्भव नहीं है। ये सब बातें ज़रूर उसके अनजाने में हुई हैं। उसका ज़िम्मेदार ओवरसियर है। लेकिन चीफ ने यह दलील स्वीकार नहीं की। उसने रिपोर्ट में दायित्व असिस्टेंट इंजीनियर अर्थात् हिरन के ऊपर डाल दिया। जी० एम० ने हिरन से उसकी लिखित कैफियत मांगी।

पिता की साइन की हुई चार्ज-शीट पाने पर हिरन का दिमाग ठीक

नहीं रहा। यदि जवाब धीरे-धीरे सोच-समझकर देने की चेष्टा करता, जिस-जिस विषय में उसके वक्तव्य की मांग की गई थी, उसीमें अपने को सीमित रखता तो बात शायद इतना जटिल रूप धारण नहीं करती। किन्तु हिरन नौकरी के दांव-पेचों का अभी तक अभ्यस्त नहीं हुआ था। इसके अलावा, पिता पर एक तीव्र अभिमान भी था। इसलिए उसका जो एक्सप्लेनेशन जी० एम० के पास पहुंचा, उसमें गौण आलोचना ही ज़्यादा थी—चीफ के विरुद्ध अभियोग, दूसरे पक्ष का षड्यन्त्र, ठेकेदार की वेई-मानी और चीफ की गोपन बुराइयां इत्यादि-इत्यादि।

घटना मलिना के कानों में भी पहुंच चुकी थी। कैसे पहुंची एवं कितनी पहुंची, यह हिमांशु नहीं जानते थे। एक दिन उसने ज़रा दिल्लगी के स्वर में कहा था, "यह सब क्या शुरू कर दिया? एक ही आफिस में काम करते हुए अपने ही लड़के के साथ चिट्ठियों का आदान-प्रदान! लड़का है, गलती हो सकती है, बुलाकर डांट देने से ही बात खत्म हो जाती। सब-कुछ तुम्हारे हाथों में ही तो है।"

उत्तर में हिमांशु ने सिर्फ इतना कहा था, "सिर्फ डांट देने लायक बात नहीं थी।"

"तो क्या उसकी जान लेनी पड़ेगी? सुना है, तुम्हारे बोस साहब तो हाथ धोकर उसके पीछे पड़े हैं।"

गुप्ता साहब ने इस आलोचना को और आगे नहीं बढ़ने दिया। सोचा, इस उत्तर-प्रत्युत्तर से सिर्फ मनमुटाव बढ़ेगा और कोई लाभ नहीं होगा। पूरी चेष्टा करके भी यह बात मलिना को नहीं समझाई जा सकती कि इस मामले में उनका सम्पर्क बाप-बेटे का नहीं है। एक प्रसिद्ध संस्था के सर्वोच्च अधिकारी एवं एक विशेष काम पर नियुक्त बहुत जूनियर कर्मचारी का है। वे यहां बाप-बेटे का विचार करने नहीं बैठे हैं, बल्कि एक असिस्टेन्ट इंजीनियर के विरुद्ध उसके विभागीय प्रधान द्वारा लगाए गए दोषारोपण पर विचार कर रहे हैं।

एक चार्ज का जवाब देते हुए हिरन और भी कई नए चार्जों के सम्मुख आ खड़ा हुआ। उसकी कैफियत में चीफ के विरुद्ध जो दोषारोप थे, उनका चीफ ने तीव्र भाषा में प्रतिवाद किया एवं उनके सम्बन्ध में अविलम्ब

तहकीकात की मांग की। यह अधिकार उनको ज़रूर था। उसीकी स्वीकृति स्वरूप जी० एम० के ऑफिस से हिरन को उसके गम्भीर दोषारोप के समर्थन में उपयुक्त प्रमाण दाखिल करने का आदेश मिला। कहां मिलेगा प्रमाण ? इन सब बातों को सिद्ध करने योग्य प्रमाण नहीं रहता, साक्षी भी अन्त तक खोजने पर भी नहीं मिलते। फलस्वरूप अपने ऊंचे ऑफिसर के ऊपर लगाए गए इल्ज़ाम के अपराध में उसीके कन्धे पर कितने ही उलटे दोषारोपों का दबाव आ पड़ा। मूल इल्ज़ाम तो था ही, उसके ऊपर इन सब विभिन्न विषयों को लेकर एक बार फिर नई कैफियत की मांग की जनरल मैनेजर ने। उत्तर देने के लिए सात दिन की अवधि दी गई। किन्तु हिरन के हाथ में मोटा लिफाफा पहुंचते ही उसने तत्काल जवाब दे दिया। लिखा—जिस आफिस में सुविचार की कोई आशा नहीं है, वहां खुद के पक्ष का समर्थन करना निरर्थक है। मिस्टर गोपाल बोस जैसे चीफ इंजीनियर के अधीन काम करना उसके लिए एक दिन भी सम्भव नहीं है। इस चिट्ठी को उसका त्याग-पत्र मानकर स्वीकार कर लिया जाए।

नौकरी नामक चीज़ मिलनी कठिन ही नहीं, बहुत कठिन है। दूसरी ओर बहुत बार नौकरी छोड़ना चाहने पर भी, नौकरी व्यक्ति को नहीं छोड़ती। यहां भी वही हुआ। हिरन के विरुद्ध जो चार्ज लटक रहे थे, इस्तीफा देने मात्र से उनसे उसे छुटकारा नहीं दिया जा सकता। क्या काम छोड़ते ही उसका दायित्व समाप्त हो जाता है ? नियमानुसार हिरन का त्याग-पत्र भी नामंज़ूर कर दिया गया। उसीके साथ उसे यह भी बताया गया कि यदि वह पूर्व निर्देशानुसार कैफियत देना अस्वीकार करता है तो जो दोषारोप उसके विरुद्ध लगाए गए हैं, उनकी एकतरफा सुनवाई का बन्दोबस्त किया जाएगा। विचार के पश्चात् यदि उसका अपराध प्रमाणित हो गया तो उसे नौकरी से हटा दिया जाएगा या अन्य किसी सज़ा सहित यथोचित क्षतिपूर्ति के लिए भी उसे दोषी ठहराया जा सकता है।

इस घटना ने शुरू से ही पूरे ऑफिस में बहुत हलचल मचा दी थी। नियमानुसार बहुतों के लिए यह बाप-बेटे की लड़ाई उपभोग्य हो उठी थी। इधर-उधर रोचक आलोचना को विराम नहीं था। इसमें असली घटना की अपेक्षा बनावटी बातें ज़्यादा प्रचारित थीं। गुप्ता साहब इससे अनभिज्ञ थे,

यह बात नहीं है। लेकिन जानने पर भी वे क्या कर सकते थे। वे कितनी भी अप्रिय हों, उनके मान-सम्मान पर कितना भी आघात क्यों न लगा हो, लेकिन जनरल मैनेजर के दायित्व एवं कर्त्तव्य के रास्ते से वे नहीं हट सकते थे। अपने लड़के के साथ उनकी यह लड़ाई ग्रौर लोगों के लिए कौतूहलपूर्ण होने पर भी उन्हें बाध्य होकर इसकी कार्यवाई करनी ही पड़ी। स्टेनो को सब कुछ बताना पड़ता था क्योंकि सब गोपनीय कागज़-पत्र उसके हाथों से ही गुज़रते हैं। कनिका एक ग्रोर जितनी दुखित हुई थी, दूसरी ग्रोर स्तम्भित होकर इस मनुष्य के ग्राश्चर्यचकित संयम और स्थिर न्याय को देख रही थी।

दो-एक स्थानीय ग्रॉफिसर मित्रों ने इस केस को खुद के हाथों में न रखकर डिपुटी जनरल मैनेजर के हाथों में सौंप देने का परामर्श दिया। कनिका ने भी ग्रपनी सीमित बुद्धि द्वाराइस उपाय को उपयुक्त समझा था। और कोई होता, वह भी शायद यही करता। लेकिन हिमांशु गुप्त किसी ग्रन्य धातु के बने हुए थे। किसी तरह की दुर्बलता या दायित्व से पलायन को वे प्रश्रय नहीं दे सकते थे। इस तरह हिरन की धृष्टता ग्रौर चीफ इंजीनियर की ज़िद्द ग्रौर प्रतिशोध-स्पर्द्धा ने पूरी घटना को उनके लिए क्रमशः कठिन ग्रौर जटिल बना दिया था।

अन्त में इस स्थिति से डाइरेक्टर बोर्ड ने उनको रिहाई दिलाई। जनरल मैनेजर को इस केस को सुलझाने में जिन मौलिक असुविधाओं का सामना करना पड़ रहा था, उनकी विवेचना करके चेयरमैन पर इसके विचार का भार डाला गया। उन्होंने हिरन के विरुद्ध ग्रन्य कोई कदम न उठाकर उसका त्याग-पत्र स्वीकार करने का निर्देश दिया एवं चीफ इंजीनियर को बुलाकर मृदु-तिरस्कार के साथ उससे ग्रधीनस्थ तरुण कर्मचारी के प्रति कुछ और उदार ग्राचरण का ग्रनुरोध किया।

इस घटना के बाद कुछ महीनों तक हिरन ग्रपने पिता के सामने नहीं आया, जहां तक सम्भव था ग्रांखें मिलाने में भी दूर हट गया। हिमांशु ने भी उसे खुद नहीं बुलाया। उन्होंने गौर किया कि हिरन प्रायः हर समय व्यस्त रहता था। शायद नौकरी की तलाश में ग्रधिकांश समय वह घूमने-फिरने में बिताता था। इस तरह यदि खुद ही इन्तज़ाम कर ले तो बहुत

अच्छा है। यदि कामयाव नहीं हुआ तो वे सहायता करेंगे ही। तब तक जो मनमुटाव हो गया था, उसकी कड़ुवाहट भी बहुत कम हो जाएगी। हिमांशु ने यही सब बातें सोच रक्खी थीं।

एक दिन हठात् लड़का उनसे मिलने के लिए आया। उसने वाहर जाने की पोशाक पहन रखी थी। ग्राते ही प्रणाम करके बोला, "मैं जा रहा हूं।"

"कहां ?" हिमांशु ने विस्मित होकर पूछा।

"सूडान।"

"सूडान ? वहां क्या है ?"

"वहां मुझे एक नौकरी मिल गई है। सोचने-विचारने के वाद मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि जितनी दूर चला जाऊं, मेरे लिए उतना ही ग्रच्छा है।"

हमेशा ग्रडिग और सतर्क रहने वाले हिमांशु गुप्ता सहसा जैसे दुर्बल हो गए। रुक-रुककर बोले, "जाने का इरादा पक्का कर लिया है ?"

"हां, गाड़ी छुटने में एक घंटा और वाकी है।"

कहकर हिरन ठहरा नहीं। हिमांशु वहीं बैठे रहे। उन्हें याद ग्राया, करीब एक महीने पहले अखबार में पढ़ा था कि सूडान गवर्नमेंट ने भारत से कुछ इंजीनियरों की मांग की थी, एवं उसके लिए दरख्वास्त मांगी गई थी। नौकरी की शर्तें ज़्यादा आकर्षक नहीं थीं। हिरन उसीके पीछे दौड़ेगा, यह उन्होंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। समझ नहीं सके, उसे इतनी दूर जाने की क्या ज़रूरत है। ग्राज समझ गए, और यह भी अस्पष्ट नहीं रहा कि वह उन्हींके कारण जा रहा है। जितना कुछ समझ में नहीं ग्राया था, वह पत्नी की बातों से साफ हो गया। लड़के की टैक्सी छूटते ही मलिना ग्रांधी की तरह कमरे में आ घुसीं। दोनों आंखों से अग्नि वरसाती हुई वोलीं, "ग्रब तो खुश हो ?"

हिमांशु खिड़की से वाहर की ग्रोर देख रहे थे। उसी मुद्रा में वोले, "तुम जानती थीं, वह इतनी दूर जा रहा है ?"

"ज़रूर जानती थी।"

"कहां, मुझे तो कुछ नहीं बताया ?"

"तुम्हें ! तुम्हें बताने से क्या लाभ होता ? तुम्हीं ने तो चाहा था कि

वह दूर चला जाए।"

हिमांशु बात को और बढ़ाना नहीं चाहते थे। वहां रहने से पत्नी से और भी हृदयबेधक दोषारोप सुनने पड़ते इसलिए उठकर खुद के सोने के कमरे में चले गए।

चैम्बर के बाहर जैसे ही पैरों की आहट सुनाई पड़ी, गुप्ता साहब ने आवाज़ दी, "कौन है ?"

"मैं हूं, हुज़ूर।"

खास बेयरे गंगाधर साहू की आवाज़ आई। वे बोले, "तुम अभी तक घर नहीं गए ?"

गंगाधर दुविधा में पड़ गया। कुंठित स्वर में बोला, "हुज़ूर···बैठे हुए हैं···"

"ओह, अच्छा। चलो, मैं भी जा रहा हूं।"

रात के सात बज गए थे। आफिस के गेट से बाहर निकलने के बाद बस-स्टाप के पास से गुज़रते समय फुटपाथ पर नज़र पड़ते ही उन्हें लगा कि भीड़ में जो औरत खड़ी है, वह देखने में ठीक कनिका की तरह है। पीछे घूमकर एक बार फिर अच्छी तरह देखा और समझ गए कि कनिका ही है। गाड़ी रोककर ड्राइवर को उसे बुला लाने के लिए भेजा। उसके पास आकर खड़े होते ही गाड़ी के भीतर से मुंह बाहर निकालकर बोले, "क्या बात है ? शायद बस नहीं मिली।"

कनिका ने सिर झुका लिया। उसके बाद बोली, "देखती हूं, शायद आने ही वाली होगी।"

पास से एक बूढ़ा आदमी गुज़र रहा था। उनकी बातें कानों में पड़ते ही उसने पूछा, "कौन-सी बस ? आप कहां जाएंगी ?"

"बेनियापुकुर।"

"नहीं मिलेगी। इंटाली मार्केट के पास कुछ देर पहले मार-पीट हो गई थी। ट्राम-बस दोनों बन्द हैं।"

इतना कहकर वह आगे बढ़ गया। कनिका की आंखों में और चेहरे पर भय की छाया फूट पड़ा। हिमांशु बोले, "तो फिर एक टैक्सी करके···नहीं

यह शायद ठीक नहीं रहेगा···अच्छा, आप आइए। मैं पहुंचा देता हूं।"

उन्होंने दरवाज़ा खोल दिया। कनिका दुविधा-मिश्रित स्वर में बोली, "आपको बहुत असुविधा होगी।"

"असुविधा कैसी ? आइए, बैठ जाइए।"

कहकर एक कोने की तरफ खिसक गए। कनिका भीतर किसी तरह सिकुड़कर बैठ गई, और दरवाज़े को बन्द कर लिया। गाड़ी चलनी शुरू होते ही खट्-खट् शब्द करने लगी। दरवाज़ा ठीक से बन्द नहीं हुआ। "अच्छा, ठहरिए, मैं बन्द कर देता हूं।" कहकर हिमांशु ने हाथ बढ़ाकर दरवाज़े को खोलकर ज़ोर से खींच दिया।

कनिका के हाथों में और घुटने में उनके हाथों का स्पर्श लगते ही हृदय में गुदगुदी-सी हुई। जितना सम्भव था एकदम कोने में धंसकर बैठ गई और बाहर की ओर देखने लगी। हिमांशु ने ड्राइवर से पूछा, "बेनियापुकुर जानते हो ?"

"जानता हूं, सरकार।"

"इंटाली की ओर न जाकर दूसरे रास्ते से चलो।"

"वैसे ही चल रहा हूं।"

कनिका की ओर घूमकर बोले, "लोअर सर्कुलर रोड के बाद किधर जाना पड़ेगा, बता सकेंगी तो ?"

कनिका ने सिर झुकाकर कहा, "बता सकूंगी।"

कनिका का घर एक गली के बीच में था। इतनी बड़ी गाड़ी वहां जाना मुश्किल था। मोड़ तक पहुंचते ही कनिका बोली, "यहां से मैं चली जाऊंगी।"

"कितनी दूर पैदल चलना पड़ेगा ?"

"ज़्यादा दूर नहीं। तीन-चार मकान के बाद ही मेरा घर है।"

"अच्छा, तो फिर···" दरवाज़ा खोलकर उसे पकड़े हुए बोले गुप्ता साहब, "हम लोग भी यहीं से लौट जाते हैं।"

उतरने के बाद कनिका ज़रा दुविधा में पड़ गई। धन्यवाद-सूचक कुछ कहने की ज़रूरत थी और इधर लज्जा से उसका मुंह लाल हो रहा था, इसलिए बोल नहीं पा रही थी। अन्त में मौन रूप से नमस्कार करके चलना

शुरू कर दिया। गुप्ता साहब ड्राइवर की ओर घूमकर बोले, "चलो।"

जगह संकरी थी इसलिए गाड़ी को घुमाने में थोड़ा समय लगा। आगे बढ़ाकर, पीछे करके, टेढ़ी-मेढ़ी करके मुंह को घुमाने की कसरत तब भी खत्म नहीं हुई थी, इसी समय ड्राइवर ने देखा कि कनिका उसको रुकने के लिए हाथ से इशारा कर रही है एवं तेज़ कदमों से इसी ओर आ रही है। उसके साथ एक वृद्ध महिला थी। गाड़ी रुकते न रुकते ही वे दरवाज़े के पास पहुंच गईं एवं गुप्ता साहब के आंख उठाते ही महिला की ओर इशारा करते हुए कनिका बोली, "मेरी दादी।"

"ओह", कहकर मृदु स्वर में हंसते हुए हिमांशु ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। महिला ने हाथ जोड़कर कहा, "जब दया करके इतनी दूर आए ही हैं तो थोड़ा-सा कष्ट करके इस गरीब की कुटिया को पैर की धूल देकर जाना पड़ेगा।"

हिमांशु असमंजस में पड़ गए और कनिका की ओर देखने लगे। उसने सिर झुकाकर लज्जित स्वर में कहा, "मैंने आपको उतरने के लिए नहीं कहा, इसीलिए दादी मुझे डांटती-डांटती आई हैं।"

"डांटूंगी नहीं?" पोती को फटकार दिया वृद्धा ने, "मालिक तुम्हें खुद पहुंचाने आए हैं, यह क्या कम सौभाग्य की बात है? यदि आप दरवाज़े से लौट जाते तो मन बहुत दुःखित होता, बाबू।"

हिमांशु उतरते-उतरते बोले, "मैं मालिक नहीं हूं, आपकी पोती की तरह ही वहां का एक कर्मचारी हूं। पद में ज़रूर कुछ ऊंचा हूं, बस इतना ही।"

"ना बाबा, हमारे लिए मालिक, राजा सभी तुम हो।" कहते ही पोपले मुंह से वृद्धा हंस पड़ी, "देखो, 'तुम' कह बैठी। सत्तर वर्ष की उम्र हो गई है, लेकिन किसे क्या बोलना चाहिए, ख्याल ही नहीं रहता।"

"नहीं, नहीं, ठीक ही किया है। 'तुम' ही तो बोलेंगी आप। बल्कि 'आप' बोलतीं तो मुझे बुरा लगता।"

रास्ते के ऊपर ही एक छोटा-सा घिरा हुआ बरामदा, उसीमें दो छोटे-छोटे कमरे। सामने रास्ता था, लेकिन पारदर्शी पर्दा लगा था। खिड़की में

भी हाथों से काढ़ा हुआ सफेद कपड़े का पर्दा झूल रहा था। लाल-सीमेन्ट का फर्श चमचमा रहा था। बरामदे में सिर्फ बेंत की एक कुर्सी थी और उसके पास कुछ मोढ़े। सभी पर कपड़े की खोली चढ़ी हुई थी, जिनके ऊपर धागे का सूक्ष्म काम किया हुआ था। सब मिलाकर एक साफ-सुथरा परिवेश था। एक नज़र देखते ही मन खुशी से भर उठा।

अतिथि को कुर्सी पर बैठने के लिए कहकर वृद्धा एक पंखा लेकर आई। हिमांशु बोले, "नहीं, नहीं, आप हवा करेंगी क्या? लाइए, पंखा मुझे दीजिए।"

"ऐसा कभी हो सकता है, बाबा? ऐसे ही इस झोंपड़ी में आकर आपको इतना कष्ट हो रहा है।"

"कुछ भी कष्ट नहीं हो रहा है। मुझे तो बहुत अच्छा लग रहा है। चारों ओर इतने सुन्दर ढंग से सजाया हुआ घर।"

"यह सब इसीने अपने हाथों से किया है।" कहकर अंगुली से पोती की ओर इशारा किया। इस बीच कनिका ने दादी के हाथ से पंखा लेकर, मालिक के पास खड़ी हो हवा करनी शुरू कर दी थी। खुद के विषय में प्रसंग उठते ही उसने सिर झुका लिया।

हिमांशु उसके झुके हुए चेहरे की ओर देखकर बोले, "रहने दीजिए, पंखा मत कीजिए, ऐसे ही काफी हवा आ रही है।"

"ओह मां! तुम उसके साथ आप कहकर बातें करते हो क्या?"

"मैं सबके साथ ऐसे ही बात करता हूं।"

"ना बाबा, उसके साथ तो आप कहकर बातें मत किया करो। इससे उसे पाप जो लगेगा। ऐ, भाग कहां रही है? साहब को प्रणाम नहीं करेगी क्या? जिनकी दया से जीवित हो, इन दुर्दिनों में दो टाइम खाना खाती हो, पहनती हो···"

कनिका के दो भांजे-भांजी हैं—लड़का तेरह वर्ष का और लड़की दस-ग्यारह वर्ष की। उस ओर की दीवाल के कोने से ही लड़की झांककर जा रही थी कि वृद्धा की नज़र पड़ गई। डांट सुनने के पश्चात् धीरे-धीरे पैर बढ़ाती हुई वह आगे आई और जल्दी से प्रणाम करते ही दौड़कर कमरे में जा घुसी। वृद्ध महिला हंसकर बोली, "यह मेरी बड़ी पोती मनी की लड़की

है। मनिका और कनिका···इनके पिता द्वारा रक्खे हुए प्यार के नाम । मां तो बहुत पहले ही चली गई थी। करीब चार वर्ष पहले इन्हें मेरे सिर पर छोड़कर बाप भी चला गया। और जिसके जाने की उम्र है, वह चौकीदारी के लिए पड़ी है।"

बोलते-बोलते गला रुंध गया। आंचल से आंखें पोंछकर बोली, "बड़ी लड़की की शादी बाप ही कर गया था। सात वर्ष पार होते ही मांग का सिंदूर खोकर लौट आई। अब सब-कुछ कना के ऊपर है। इसे नौकरी देकर इस दुर्दिन के समय कितना बड़ा उपकार किया है तुमने, बाबा। भगवान तुम्हें और बड़ा करे।"

बहन की लड़की के हाथ में एक छोटी ट्रे एवं खुद चाय और पानी का गिलास लिए कनिका के आकर खड़े होते ही बोले हिमांशु, "इस समय तो मैं कुछ नहीं खाता।"

"मैंने कहा था, लेकिन दादी···"

वृद्धा पोती के मुंह की बात छीनते हुए अनुनय-भरे स्वर में बोली, "चाय मत पियो, ज़रा मुंह ही मीठा कर लो।"

हिमांशु ने कनिका के चेहरे की तरफ देखा। वहां भी इसी अनुनय का नीरव समर्थन था। और कोई बात न कहकर हिमांशु ने डिश से एक सन्देश उठा लिया।

३

शाम की गाड़ी बहुत पहले ही छूट चुकी थी। बहुत जल्दी करने पर भी गाड़ी नहीं पकड़ सके। खड़गपुर कार्यकर्ताओं की ओर से एक प्रतिनिधि स्टेशन पर प्रतीक्षा कर रहा था। उससे मालूम पड़ा कि कलाकार पहली ट्रेन से ही चले गए। सिर्फ एक आदमी रह गया है।

"कौन ?" शोभन ने जानना चाहा।

"नाम तो नहीं जानता। दुबला-पतला, गोरा, आंखों पर काला चश्मा लगाए है।"

"ओह, हमारा कवि।" कहकर मृदु हंसी हंसते हुए शोभन ने मलिना की ओर देखा।

"वह क्या करने के लिए रह गया ?" ज़रा नाराज़गी के स्वर में बोली मलिना।

"यह प्रमाणित करने के लिए कि वह आम जनता के दल में शामिल नहीं है। खैर, चलो अब लौट चलें।"

"क्यों, और कोई गाड़ी नहीं है ?"

प्रतिनिधि ने बताया, "करीब रात के ग्यारह बजे एक गाड़ी है, उससे जाने पर सुबह के करीब पहुंचा जा सकता है।"

मलिना बोली, "तब और क्या चाहिए ? उससे ही जाएंगे।"

शोभन हल्की-सी आपत्ति उठाने जा रहा था, "इससे तो अच्छा है कल सुबह…"

"नहीं, जब आ ही गए हैं, तो आज ही जाएंगे। यहां खड़े न रहकर ऊपर प्रतीक्षालय में बैठना ठीक रहेगा।"

"इससे पहले उधर चलो। जब घर लौटना नहीं चाहती हो तो जठराग्नि को यहीं शान्त कर लेना पड़ेगा।"

"तुम्हीं जाओ, मैं अब कुछ नहीं खाऊंगी ।"

"क्यों ?"

"भूख नहीं है ।"

"तो मुझे भी भूख नहीं है। एक यात्रा में पृथक् व्यवस्था क्यों होगी ?"

मलिना ने बात और बढ़ाई नहीं । मृदु हंसी हंसकर रिफ्रेशमेण्ट-रूम की ओर पैर बढ़ाने लगी ।

शोभन ने प्रतिनिधि-लड़के से भी उनका साथ देने के लिए अनुरोध किया। उसने सविनय बताया कि उसने यह काम पहले ही खत्म कर लिया है ।

प्रतिनिधि लड़के की श्रवण-सीमा से बाहर पहुंचते ही शोभन ने पूछा, "तुम क्या मुझसे नाराज़ हो, मौसी ?"

"क्यों ? गुस्सा होने के क्या लक्षण देखे हैं तूने ?" मलिना के चेहरे पर दबी हंसी फूट पड़ी ।

"इसे गुस्सा होना नहीं—तो ख़ुश होना कहेंगे ?"

"ठीक से साफ-साफ बताओ ।"

शोभन पैरों की ओर देखते हुए चल रहा था। उसी मुद्रा में बोला, "बच्चों के बर्त्ताव की तरह 'बचपन' नामक भी एक चीज है, जिसकी तुमसे बिलकुल आशा नहीं है ।"

"यह बात शायद तुम्हारी ही आविष्कार की हुई है। ज़रा व्याख्या की ज़रूरत है ।"

"शाम के समय इतनी बड़ी कहानी सुनाने के बाद भी ?"

मलिना के चेहरे पर दबी हंसी मिली हुई गम्भीरता की छाया फूट उठी। उसने तत्काल कोई जवाब नहीं दिया । निःशब्द कुछ आगे बढ़ने के पश्चात्, बोली, "तुम गलती कर रहे हो। इन सब विषयों को लेकर मैं माथा-पच्ची नहीं करती।"

"मैं तो बेचैन हो गया था ।" निश्चित होने के लहजे में बोल उठा शोभन, "मैं तुम्हें जानता हूं। फिर भी चिन्तित हो गया था। क्या कहा जाए ? हमारे देश में सौ में-से निन्यानबे विवाहिता औरतें इस बात को लेकर सिर्फ माथा-पच्ची ही नहीं करतीं बल्कि ज़्यादातर अपना दिमाग भी

ठीक नहीं रख पाती हैं। तुममें अवश्य उनकी तरह बच्चों का-सा भाव नहीं है।"

"क्यों नहीं है ?" मलिना ने कौतूहलवश जानना चाहा, "मैं भी तो औरत हूं।"

"फिर भी उनमें और तुममें बहुत अन्तर है। वे सिर्फ 'स्त्री' हैं। इसे छोड़ उनका कोई अलग अस्तित्व नहीं है। मैं पुराने ज़माने की औरतों की बात नहीं कर रहा हूं, बल्कि उच्च-शिक्षा-प्राप्त आधुनिक महिलाओं की बात कर रहा हूं। अपनी स्वतन्त्रता के विषय में खुद के मुंह से कितनी भी बड़ाई क्यों न करें, असल में वे सब अपने पति की छाया हैं या कह सकते हैं, अंग हैं। उनके चलने-फिरने, उठने-बैठने या और किसी काम में ज़रा-सा भी इधर-उधर होते ही इनके ऊपर दबाव पड़ता है, खून व्याकुल हो उठता है। पतिदेव के मूड्स के साथ इनका बैरोमीटर चढ़ता-उतरता है। हमारी ये तथाकथित आधुनिकाएं देहाती बहनों से भी बहुत अधिक सेन्सिटिव हैं। इनकी मानसिक स्थिति का चित्रण करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। हमारा कवि रहता तो बता सकता था।"

"स्पर्श-कातर ?"

"ठीक कहती हो, स्पर्श-कातर। इनके कातर रहने का कारण है, क्योंकि इनका कोई दूसरा क्षेत्र तो रहता नहीं है, खुद का क्षेत्र नामक भी कोई वस्तु नहीं है, यदि खुद के कुछ पार्ट्स या टैलेण्ट्स रहते भी हैं तो उन्हें काम में लगाने का कोई रास्ता नहीं है, गुंजाइश नहीं है...। खैर, छोड़ो इन बातों को। तुम अपना लेख तो लाई हो ना ?"

"कौन-सा लेख ?"

"उस दिन तुमने जो 'शुभानन्द निलय' पर लिखा था।"

"मैं क्या जानूं ?"

" 'मैं क्या जानूं', से काम नहीं चलेगा। यदि नहीं लाई हो, तो अभी जाकर लाना पड़ेगा। हम लोग अपने इस सांस्कृतिक प्रतिष्ठान की ओर से देश को क्या दे रहे हैं—यह इतने सुन्दर ढंग से, थोड़े-से शब्दों में कोई नहीं बोल सकता। शो आरम्भ होने से पहले वह तुम्हें पढ़ना पड़ेगा।"

"अच्छा, तब का तब देखा जाएगा। अभी से इतने बेचैन होने की क्या

ज़रूरत है।"

शोभन समझ गया कि मलिना लेख लाना भूली नहीं है।

रिफ्रेशमेण्ट रूम से निकलने के बाद मलिना दूसरी मंज़िल के अपर क्लास वेटिंग-रूम की ओर चलने लगी। शोभन बोला, "तुम जाओ, मैं ज़रा घूमकर आता हूं। देखूं, कवि कहां गया?"

"तब तो बड़ी भूल हो गई।" हठात् रुक गई मलिना और ज़रा डांट के स्वर में बोली, "खाने से पहले ही उसे खोजना चाहिए था।"

"उसके लिए चिन्ता मत करो। इस ओर से कवि बहुत होशियार है। वह रात में भूखा रहनेवाला प्राणी नहीं है। भोजन उसके लिए एक पर्व है, और यह पर्व हमारे सामने ठीक से जमता नहीं। हो सकता है, इतनी देर में वह कोई निराला कोना खोजकर आगे बढ़ रहा हो।"

"यदि उससे मुलाकात हो जाए तो पूछ लेना कि उसे कुछ रुपये-पैसे की शायद···"

"उसके पास सब-कुछ है।"

अतनु सान्याल किसी समय कविताएं लिखता था। छन्द एवं मात्रा मिलाकर पुराने ज़मानेवाली कविता नहीं, छन्दहीन, गद्य कविता। पाठक-पाठिकाएं जितना कम समझते, वाह-वाह उतनी ही ज़्यादा करते, लेकिन खरीदते नहीं। इसलिए मन के दुखःपूर्ण काव्य को छोड़कर उपन्यास में हाथ लगाया अतनु ने। लेकिन उसका कवि नाम मिटा नहीं। 'शुभानन्द निलय' के कार्यक्रमों में रचना पढ़ना उसका प्रधान काम था। दुर्बोध्य भाषा में भावावेग-कम्पित मुद्रा में वह पढ़ता जाता। उसका स्वर समाप्त होते ही नाच-गाने का कार्यक्रम शुरू हो जाता। नाच-गाना रुकते ही फिर उसका पाठ आरम्भ हो जाता। लेकिन कोई सुनता नहीं। हां, उसके कविता-पाठ का एक उपयोग ज़रूर था। दर्शकों ने अभी तक जो नाच-गाना देखा-सुना था, उन्हें आपस में उसकी आलोचना करने का समय मिल जाता। आवाज़ें जितनी बढ़ती जातीं अतनु का गला भी उतना ही चढ़ता जाता। यदि पाठ बड़ा होता तो आवाज़ें कोलाहल में परिवर्तित हो जातीं और अतनु का स्वर सुनाई देना बन्द हो जाता। तब विंग्स के पास

से शोभन का तेज़ स्वर सुनाई देता, "आप लोग शान्त हो जाइए।" दुखित हो कवि अपना कविता-पाठ बन्द कर देता। जो उद्देश्य होता, अर्थात् परवर्ती दृश्य की तैयारी, उसमें बाधा पड़ जाती। लेकिन इसपर कोई ध्यान नहीं देता बल्कि लोग खुश होकर हिल-डुलकर बैठ जाते। वे पैसे देकर गाना सुनने, नाच देखने के लिए आए हैं, कविता-पाठ सुनने के लिए नहीं।

अभी हाल ही में 'शुभानन्द' ने एक नई परिकल्पना में हाथ लगाया था—लोक-संगीत और लोक-नृत्य के परिवेश में। गावों में साधु-फकीर घर-घर जाकर भिक्षा मांगते हैं, एकतारा बजाकर गाते हैं, और नाचते हैं; इसी तरह गम्भीर रात्रि में मांझी नाव की पतवार के साथ-साथ ताल में ताल मिलाकर जो राग खींचते है, शहरी मनुष्यों के लिए उसका एक अनोखा स्वाद होता है। मेले में, पर्व में, शादी में, जनेऊ में और शिशु के मुंह में प्रथम अन्न देने के संस्कार में पूर्वी बंगाल के ज़िले-ज़िले में गांव की लड़कियां कभी आमने-सामने बैठकर, और कभी नदी-रास्ते की जुलूस-यात्रा में शामिल होकर अनेक प्रकार के लोकगीत गाती हैं और लोक नृत्य करती हैं। बात व स्वर दोनों ही साधारण रहते हैं, फिर भी उस परिवेश से दूर, जो लोग आधुनिक सभ्यता के बीच रहते हैं, उनके लिए इनका प्रभाव मामूली नहीं है। और कुछ न हो, एक नयेपन की चमक है। मलिना इसी देश की स्त्री है। बचपन में ग्राम्य-जीवन के साथ उसका घनिष्ट सम्बन्ध था। शादी के बाद भी कुछ साल उसे मैमनसिंह के एक छोटे कस्बे में जीवन व्यतीत करना पड़ा था। वहां के गाने, बजाने, गाथा और बाऊल-संगीत की एक क्षीण-सी याद उसकी स्मृति में संचित रह गई है। उसी स्मृति का थोड़ा-सा अंश इस प्रतिष्ठान के माध्यम से शहर के द्वार पर पहुंचा देना चाहती थी मलिना।

इस कार्य की सिद्धि के लिए मलिना को एक ऐसा आदमी चाहिए था, जिसके पास रुचि हो, कान हों, जो कम से कम असली चीज़ को पहचानता हो और उसे छांटकर लाने का जिसे प्रारम्भिक ज्ञान हो। उसमें-से ज़रूरत के मुताबिक परखकर, तर्क-विचार करके अच्छे समाज में रखने लायक रूप देने का काम वे खुद ही करेंगी, यही उन्होंने निश्चित किया था। इस लोक-

संग्रह की बात में सहायता करने के लिए एक दिन शोभन अतनु को खोजकर लाया था। इस विषय में कवि पूरी तरह योग्य था। उसके गले में स्वर है, पैरों में ताल है, और ग्रामीणों के साथ सहज भाव से मिल जाने का विशेष कौशल वह जानता है। इसीलिए रंगपुर, मैमनसिंह, गारो पहाड़, आसाम सीमान्त एवं और भी कितने ही दुर्गम अंचलों में घूम-घूमकर जो नमूने उसने एकत्रित किए थे, उन्हीं पर विचार-विमर्श करके कुछ लड़के-लड़कियों को लेकर करीब तीन घंटे के एक शो का आयोजन करने की योजना बनाई थी मलिना ने। विभिन्न जगह शो आयोजित करने के बाद अब खड़गपुर से आग्रहपूर्वक आमन्त्रण आया था।

भोजनालयों में झांक-झांककर देखने पर भी शोभन को कवि नहीं मिला। उसने सोचा, हो सकता है इस कार्य को और भी अच्छी तरह से सम्पन्न करने के उद्देश्य से वह या तो बड़ा बाजार चला गया होगा या अन्य कहीं जाकर बैठा होगा। फिर भी एक बार उत्तर की ओर भी देखने का निश्चय किया। उस ओर जाते समय थर्ड-क्लास वेटिंग रूम के सामने एक भीड़ दिखाई दी, शोभन वहां जा पहुंचा। देखा, भीड़ लगने के बहुत-से कारण हैं। कुछ असभ्य या अर्धसभ्य नर-नारी कुछ गठरियां लिए एक खुले चबूतरे पर बैठे हैं। उनमें दो युवतियां हैं। उनकी सुडौल, स्वस्थ, त्रुटिरहित, शारीरिक गठन एवं शरीर का दुःसाहसिक प्रदर्शन करनेवाले वस्त्रों ने कुछ सभ्य एवं लालची मनुष्यों को वहीं अचल कर दिया था। छाती पर जो वस्त्र उन्होंने किसी तरह धारण कर रखा था, उसे वस्त्र न कहकर उसका खिलवाड़ कहना ज़्यादा उपयुक्त होगा। नीचे के अंगों के वस्त्र भी सभ्य लोगों की आंखों में अ-शालीन ही थे। फिर भी उनके चेहरे पर लज्जा या संकोच का लेशमात्र भी चिन्ह नहीं था। बीच-बीच में सरल विस्मय भरी आंखें उठाकर दर्शकों की ओर देख रहे थे। अर्थहीन, कौतूहल-हीन, निर्लिप्त दृष्टि—वन का हिरण जिस दृष्टि से देखता है। शोभन ने सोचा, इतिहास जो भी कहे, ग्रीक कलाकारों ने शायद इन्हें देखकर ही अनेक प्रकार की देवी-मूर्तियों की कल्पना की थी। इन्हें देखे बिना शारीरिक शोभा का असली अर्थ असम्पूर्ण रह जाता। शरीर का दैन्य ढकने के लिए

ही वस्त्रों की ज़रूरत पड़ती है। प्रकृति के वरदान से ये लोग अनन्त शारीरिक सम्पत्ति के अधिकारी हैं, इसलिए वस्त्र इनके अनावश्यक ही हैं। जो कुछ वस्त्र इन्होंने धारण कर रखे हैं, वे भी सिर्फ सभ्यता का मान रखने के लिए। अपने जंगली और पहाड़ी परिवेश में, जहां सभ्य मनुष्य की कलुषित दृष्टि नहीं पहुंचती, शायद ये बिना आवरण के ही रहते हैं।

भीड़ के बीच हठात् अतनु पर नज़र पड़ते ही शोभन आगे बढ़ा और उसका कंधा दबाकर पकड़ लिया। कवि तन्मय होकर देख रहा था, सहसा चौंक पड़ा। भीड़ से बाहर निकलकर आते ही लज्जित एवं कैफियत के स्वर में बोला, "देख रहा था, ये लोग किस देश के हैं।"

"यह तो मैं समझ गया। लेकिन तुमने असली काम खत्म कर लिया या नहीं ?" कहकर शोभन ने दाहिने हाथ की अंगुलियों को मुंह के पास ले जाकर इशारे से समझाया।

"नहीं तो। तुम लोग स्टेशन क्यों आए ? इतनी देर कैसे हुई ? बाकी सब कहां हैं ?"

"एक-एक करके सब प्रश्नों के उत्तर दे रहा हूं। लेकिन पहले यह बताओ कि अब तुम्हारी क्या इच्छा है ? उधर चलोगे या अभी भी तुम्हारी प्यास नहीं मिटी, और देखना चाहते हो ?"

"नहीं, चलो। ये किस जाति के हैं, जानते हो ? मुरिया। सी० पी० और उड़ीसा के बार्डर पर घने जंगलों में रहते हैं। दलालों के पल्ले पड़कर चाय-बागान में काम करने के लिए आसाम जा रहे हैं।"

"इतनी सब खबर तुमको कहां से मिली ? क्या उन्हींसे पता लगाया है ?"

"बिना उनसे पूछे क्या खबर नहीं मिल सकती ? इनकी भाषा समझने वाले चाय-बागान के दो आदमी आपस में बातचीत कर रहे थे। ये लोग तो बहुत कुछ सभ्य हो गए हैं। जो लोग गंजाम ज़िले के दुर्गम पहाड़ी अंचलों में रहते हैं, वे आज भी बिलकुल आदिम हैं। किन्तु जैसा कि मैंने सुना है, इनके गले में आश्चर्यजनक स्वर और पैरों में अद्भुत नृत्य-क्षमता है। इनको एक-एक नज़र देखते ही इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है। प्रतिवर्ष इनका 'माडाई' नामक एक उत्सव होता है, जिसमें नाच-गाने,

खेल-कूद और खाना-पीना होता है। इनके उत्सव का मतलब ही होता है नाच-गाना। एकदम प्राचीन और अकृत्रिम फोक डान्स। हम लोग जो मंच पर दिखाते हैं, उसका नाम लोक-नृत्य होने पर भी असल में वह बनावटी होता है। उसमें भला विशुद्ध ग्रामीण अंश कितना होता है ?"

"बहुत अच्छा, तो चले जाओ न इनके देश में ? और थोड़े-से शुद्ध माल का इन्तज़ाम करके ले आओ।"

यह प्रस्ताव मज़ाक के रूप में किया गया था, फिर भी अतनु लालायित हो उठा। लेकिन तत्काल निराश स्वर में बोला, "क्या मालकिन इसके लिए राज़ी हो जाएंगी ? ज़रा ज़्यादा पैसे मिले बिना इतनी दूर नदी के पार कैसे जाया जा सकता है ?"

"सिर्फ मोटी रकम ही नहीं, साथ में एक सूक्ष्म चीज़ और भी हथेली पर लेकर निकलना पड़ेगा।"

"वह क्या ?"

"अपने ये अमूल्य प्राण। किस समय एक विष-भरा तीर छाती को बींधता हुआ निकल जाएगा कहा नहीं जा सकता। वन के पशु भी सभ्य मनुष्य की आंखों के भाव पढ़ सकते हैं। खैर जो हो, ये सब बातें बाद में सोचने से भी चलेगा। अभी जो करना चाहते हो, वह करो। गाड़ी आने में ज़्यादा देर नहीं है।"

"अरे, अभी असल काम तो बाकी ही है।" कहकर, पेट पर हाथ फेरते हुए अतनु बोला, "तुम लोगों ने···?"

"हम लोगों के बारे में तुम्हें चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। तुम जाओ और खुद के चरखे में तेल डालो।"

"ओह ! तुम लोगों ने निपटा लिया है।" कहकर कवि निहायत साधारण मनुष्य की तरह रेस्तरां की ओर बढ़ गया।

इस गाड़ी में फर्स्ट क्लास में ज़्यादा भीड़ नहीं रहती। इसलिए जगह मिलने में कोई दिक्कत नहीं हुई। एक पांच बर्थ वाला पूरा कमरा खाली मिल गया। मलिना एण्ड पार्टी ने नीचे की तीनों बेंच पर दखल जमा लिया। खड़गपुर के लगो दूसरे कमरे में चले गए। रात हो गई थी। शोभन और

अतनु साथ-साथ बिछौना बिछाकर सो गए। मलिना से भी बोले, "रात-भर जागकर क्या करोगी ? सो जाओ।"

मलिना बोली, "जब तक गाड़ी नहीं चलेगी, मुझे नींद नहीं आएगी। तुम लोग सो जाओ।"

प्राय: आध घण्टे के बाद गाड़ी छूटने के समय साहबी पोशाक पहने एक वृद्ध सज्जन एवं उनके साथ एक वयस्क महिला घबराए हुए जल्दी से उसी डिब्बे में चढ़ गए। महिला बोल उठी, "यहां तो लोअर बर्थ खाली नहीं है। बगलवाला डिब्बा देख लिया आपने ?"

"देख लिया। छोटा-सा है। दोनों बर्थ भरी हैं।"

"तब फिर ?" महिला चिन्तित दिखाई दी।

"मैं किसी तरह ऊपर की बर्थ पर चढ़ जाता हूं। तुम भी किसी तरह···"

"अरे बाबा, मैं यह सब नहीं कर सकूंगी।"

"क्यों ?" वृद्ध अपनी पत्नी के नज़दीक मुंह ले जाकर बोला, "मैंने सुना है, शादी के कुछ दिनों पहले तक तुम कमर में साड़ी बांधकर अमरूद के पेड़ पर चढ़ती थी।"

"गाड़ी में इतने लोगों के बीच क्या ऊटपटांग बकते हो।" महिला ने उसे डांट दिया।

अंतिम शब्द डरते-डरते धीरे से कहने पर भी उसकी आन्तरिक खुशी का भाव दबा नहीं रह सका।

वह हंस पड़ा, "इतने लोगों के रहने से क्या हुआ, मैंने कोई गलत काम तो किया नहीं है ?"

"गलत काम करते भी तुम्हें कितनी देर लगती है। अब तुम्हारा विश्वास नहीं रहा। जितने बूढ़े हो रहे हो, उतना ही रस बढ़ रहा है।"

इतनी सब बातें बहुत धीरे-धीरे फुसफुसाहट के स्वर में की गईं। फिर हठात् महिला का स्वर तेज़ हो उठा, "मैं सारी रात यहां खड़ी नहीं रह सकती। चलो, एक बार सेकेण्ड क्लास के डिब्बे में भी देख लें।"

वृद्ध ने घड़ी देखते हुए कहा, "अब इसका समय नहीं है। कुछ घण्टे तो यहीं कोई न कोई व्यवस्था कर लेते हैं। तुम ज़मीन-शय्या पर आराम

करो ग्रौर मैं वीर हनुमान का नाम लेकर ऊपर वाली बर्थ पर चढ़ने की कोशिश करता हूं।"

"अच्छा, क्या ऐसा नहीं हो सकता कि उन दोनों लड़कों से ऊपर चले जाने का ग्रनुरोध किया जाए ?"

"इतनी रात गए नींद से जगाकर ? फिर यदि ये लोग इन्कार कर दें ?"

"ग्रच्छा, एक बार कहकर तो देखो !"

"ऐसा गलत अनुरोध मैं नहीं कर सकता।"

"तो ठीक है, मैं कहती हूं।" बोलते हुए उठ बैठी मलिना। उन दोनों ने यही सोच रखा था कि गाड़ी में कोई नहीं जाग रहा है। उसी के अनुसार बातचीत कर रहे थे। हठात् वे चौंक पड़े और लज्जित दृष्टि से एक-दूसरे का मुंह देखने लगे। मलिना ने पुकारा, "शोभन।" दुबारा ज़ोर से पुकारने पर भी कोई उत्तर नहीं मिला। ग्राखिर सिर हिलाते घबराकर उठ बैठा, "कौन ?"

"मैं। अतनु को उठाकर तुम दोनों ऊपर की बर्थ पर चले जाओ।"

"क्यों ?" कहकर शोभन उठ बैठा एवं आगन्तुक दम्पती की ग्रोर एक बार देखकर बोला, "ग्रोह।"

उन दोनों के बिछौने समेटकर ऊपर चले जाने के बाद शोभन की जगह ग्रर्थात् मलिना के सिर की ओर जो बेंच थी उसपर प्रौढ़ महिला ने ग्रपने पति का बिछौना बिछा दिया। बाथरूम से रात की पोशाक पहनकर निकलने के पश्चात् वृद्ध ने इस व्यवस्था को देख-विचारकर कहा, "वहां तुम सो जाग्रो। मेरा बिछौना···"

"तुम्हें यह सब नहीं सोचना पड़ेगा। तुम जाकर चुपचाप सो जाओ। ···यह क्या। तकिया लेकर कहां जा रहे हो ?"

"जा नहीं रहा, इस ग्रोर रख रहा हूं। इनकी ग्रोर पैर करके सोऊंगा क्या ?"

"ग्रा हा, वे भी तो इस ग्रोर ही पैर करेंगी। तुम चुपचाप सो जाग्रो, तब तक हम दोनों दुःख-सुख की बातें करेंगी। क्या खयाल है बहन ?आपको बहुत नींद ग्रा रही है क्या ?"

मलिना धीरे से हंसकर बोली, "नहीं।"

मलिना के ठीक पैर के पास उनकी बर्थ का जो कोना था, महिला उसी में धंसकर बैठी थी। पति के तकिये को दूसरी ओर रखती हुई बोली, "लाग्रो, दोनों पैर आगे बढ़ाग्रो।"

"रहने दो ना। ग्राज इसकी ज़रूरत नहीं है।" मृदु आपत्ति की वृद्ध ने।

स्त्री झुंझला उठी, "ज़रूरत है या नहीं, यह मैं समझूंगी।" और तत्काल पति के दोनों पैर खींचकर अपनी गोद में रख लिए ग्रौर हाथ फेरना शुरू कर दिया। फिर मलिना की ग्रोर घूमकर बोली, "ग्राप शायद यह सब काण्ड देखकर हंस रही होंगी। बारहों महीने, तीसों दिन इसी तरह सुलाना पड़ता है इन्हें। इतने प्रसिद्ध बैरिस्टर हैं, लेकिन इस मामले में बच्चे से भी बढ़कर हैं। क्या करूं? जहां भी जाते हैं, साथ रहना पड़ता है, ग्रकेला नहीं छोड़ सकती। सारी रात मोटी-मोटी किताबें पढ़ते हैं और खाना तक भूल जाते हैं······छटपटा क्यों रहे हो? सिर में ज़रा यू डी कोलोन लगा दूं?"

ग्रन्तिम दोनों वाक्य पति को सम्बोधित करके ही कहे गए थे। वे ग्रांखें बन्द किए हो बोले, "नहीं, ग्रब जाओ, तुम भी सो जाओ।"

"जाती हूं, पहले तुम तो सो जाग्रो।" फिर मलिना की ओर मुखातिब होकर कहा, "ग्रापके पति का क्या हाल है, बहन? शायद रास्ते में रखवाली करने के लिए तो आपको नहीं जाना पड़ता होगा?"

मलिना ने कोई जवाब नहीं दिया। सिर्फ हंस दी। महिला बोली, "ग्राप बच गईं, बहन। मेरी तरह नित्य यह दुर्भोग नहीं भोगना पड़ता।"

'दुर्भोग' शब्द का मुंह से उच्चारण करने पर भी उसके स्वर में इसका कोई आभास नहीं मिला। बल्कि चेहरे पर जो भाव उभरे, उससे ऐसा लगा कि दुर्भोग तो दूर रहा, उसके लिए तो यह गर्व की बात है। बाद की बातों में भी इसी चीज़ का समर्थन मिला। उसने जो भी कहा हो, ग्रौरतों के जीवन में यही तो असल चीज़ है। इसे छोड़ उनके पास और क्या है?

धक्के से ट्रेन रुक गई। शायद कोई स्टेशन था। हठात् जैसे कुछ याद ग्राया इस तरह महिला बोल उठी, "ग्रो मां, मैं तब से अब तक बकबक करती

जा रही हूं। ग्राप तो बिलकुल चुपचाप बैठी हैं। कहिए भई, ग्राप भी ग्रपने बारे में कुछ बताइए।" कहकर जैसे उसी उद्देश्य से सिमटकर बैठ गई।

"मैं क्या बोलूं?" मुस्कराते हुए बोली मलिना, "अच्छा, आप लोग कहां जा रहे हैं?"

"पुरुलिया। वहां इनका एक केस है। सुबह की गाड़ी से ही जाने की बात थी। रात-भर डाक बंगले में विश्राम कर लेते। लेकिन इन्हें फुर्सत मिले तब तो? दो-एक ग्रासामियों ने आकर इनके पैर पकड़ लिए। ग्रापको हावड़ा जाना ही पड़ेगा। खून का एक संगीन मामला है। न जाने से नहीं चलता। लौटते-लौटते शाम हो गई ग्रौर उसके बाद इसे छोड़ ग्रौर कोई गाड़ी थी नहीं। ग्राप लोग कहां जा रहे हैं? वह शायद आपका लड़का है?" शोभन की ओर इशारा करते हुए महिला बोली।

"नहीं।"

"तब फिर?"

"लड़के का मित्र।"

"लड़के का मित्र।" महिला ज़रा विस्मित स्वर में बोली, "ग्रौर वह पासवाला?"

"वह भी।"

"इनके साथ कहां जा रही हैं ग्राप?"

महिला ताज्जुब में पड़ गई थी, यह उसके बोलने के ढंग से बिलकुल भी ग्रस्पष्ट नहीं रहा। माथे पर सलवटें डालकर तीक्ष्ण दृष्टि से बार-बार उनकी ओर देखने लगी। मलिना ने सब-कुछ देखते हुए भी सहज भाव से जवाब दिया, "खड़गपुर जा रहे हैं।"

"शायद वहीं घर है?"

"नहीं, एक काम से जा रहे हैं।"

"किस काम से?"

पहले तो मलिना दुविधा में पड़ गई, फिर बोली, "एक फंक्शन है।"

"क्या है?" शायद वह समझी नहीं।

"नाच-गाने का कार्यक्रम है।"

"नाच-गाने का?"

प्रौढ़ महिला की दोनों आंखों में और भौंहों के बीच स्पष्ट तिरस्कार के भाव झलक उठे। मलिना की ओर से सायास मुंह घुमा लिया। पति की ओर घूमकर देखा, वे सो गए थे। बहुत सावधानी से गोद में से दोनों पैर उतारकर निःशब्द उठकर उधर की बर्थ पर किसी तरह बिछौना बिछाकर दीवाल की ओर मुंह करके सो गई।

बैरिस्टर गृहिणी की पति-परिचर्या का ढंग और फिर इस आकस्मिक भावान्तर को देखकर पहले तो मलिना खूब हंसी। लेकिन वह हंसी ज़्यादा देर स्थायी न रह सकी। उसे लगा, बाहर से इनका आचरण कितना ही हास्यास्पद क्यों न हो, इसके पीछे ऐसी कोई चीज़ ज़रूर है जिसे नीची नज़र से देखना गलत है। आठों पहर अपने वयोवृद्ध पति को हिलाती-डुलाती है, डांटकर, डराकर, स्नेह से, दुलार से उसकी संभाल रखती है, कितनी ही तुच्छ एवं साधारण व्यस्तता के कार्यों के बावजूद भी जो आज़ादी और सुख के दिन ये काट रहे हैं, यदि पति से उसको मन की पर्याप्त खुराक नहीं मिलती तो यह सम्भव नहीं था। जब वे लगातार बकबक करते जा रहे थे, तब भी मलिना की दृष्टि उनकी ओर ही थी। उनके चेहरे पर एक परिपूर्ण तृप्ति की चमक थी, यह मलिना की आंखों से छिपा नहीं रहा। उन्हें देखते समय मलिना को सिर्फ एक ही बात याद आ रही थी—महिला का मन सन्तुष्ट और निश्चिन्त था। असल में यही तो उसके लिए सब-कुछ है। किसलिए संतुष्ट था, यह बड़ी बात नहीं है। जिस प्रकार विभिन्न मनुष्यों की खुराक विभिन्न है, कोई दिन-भर में दो दाने अन्न में ही तृप्त है, किसीकी तीन बार भोजन करने पर भी भूख नहीं मिटती, वही बात मन की भी है।

मलिना का हमेशा से यही अभ्यास है कि चलती गाड़ी के हिचकोले लगते ही उसे नींद आ जाती है। उसकी मुंदी हुई आंखों के सामने पीछे छोड़े हुए दिनों के दृश्य तैरने लगे। एक दिन था, जब वह भी बहुत कुछ इस बैरिस्टर-पत्नी की तरह एक व्यक्ति को पाकर ही सम्पूर्ण थी। उस समय वे कलकत्ता नहीं आए थे। इतना बड़ा मकान, गाड़ी, धन, पद—कुछ नहीं था। शहर से करीब पांच मील दूर एक पिछड़े गांव में रहते थे। उसका नाम था दौलतपुर, लेकिन वहां की दौलत सिर्फ एक कालेज था। हिमांशु गुप्ता उसी कालेज में अंग्रेज़ी के अध्यापक थे। मामूली-सी

तनख्वाह मिलती थी। कालेज के पास मैदान के कोने में एक छोटा-सा घर था। हिरन ने तब स्कूल जाना शुरू किया ही था, लड़की हुई नहीं थी। खाने-पीने से लेकर घर-द्वार झाड़ने-पोंछने तक का सारा काम अकेली मलिना को करना पड़ता था। एक छोटा-सा लड़का नौकर था। छोटे-मोटे काम-काज वह कर देता था। खाने के पश्चात् पति जब कुएं पर मुंह धोने जाते, उसी बीच दौड़कर मलिना रोज़ उनकी कालेज की पोशाक ले आती। इससे पहले तो रसोईघर से ही निकलने की फुर्सत नहीं मिलती थी। पोशाक नामक कोई खास चीज़ नहीं थी। मोटे सफेद कपड़े का कुर्ता और उसके ऊपर खद्दर की चद्दर। इन दो चीज़ों को हैंगर पर से उतार-कर लाना कोई कठिन काम नहीं था। हिमांशु इतना अनायास ही कर ले सकते थे लेकिन मलिना उन्हें नहीं करने देती थी। कपड़े खुद के हाथों लाकर दिए बिना वह नहीं मानती थी। चद्दर जैसे-तैसे कन्धे पर डाल लेना उसे पसन्द नहीं था। खूब सावधानी से तह करके कन्धे पर रख देती। निकलने से ठीक पहले आंचल से जूते पोंछ देती। पहले-पहले तो हिमांशु आपत्ति करते, "यह क्या कर रही हो ?" लेकिन मलिना सुनती नहीं थी और उन्हें डांटकर कहती, "छटपटाने से जूते कैसे पोछूंगी।" तब हिमांशु ने आपत्ति करनी बन्द कर दी। क्योंकि वे जानते थे, आपत्ति करना बेकार है।

शाम के समय जब पति लौटते, उससे पहले ही मलिना आंगन के सामने छोटे-से लकड़ी के गेट के सामने आकर खड़ी हो जाती। खुद अपने हाथों से दरवाज़ा खोलती। भीतर आते ही चद्दर, छाता और यदि हाथ में दो-चार किताबें रहतीं तो उन्हें लेकर यथास्थान रख देती—यही उसकी नित्य की रुटीन थी। किसी दिन लड़के को खाना परोस रही होती या बना रही होती, तो ठीक समय पर बरामदे में आकर खड़ी नहीं हो पाती, या हिमांशु कुछ पहले ही आ जाते—उस दिन यही आशा करती कि पति आकर पहले उसे ही पुकारेंगे। पत्नी के मन की यह इच्छा अकथित होने पर भी हिमांशु जानते थे। खुद विशेष महत्त्व न देने पर भी इसे मानकर चलते। अकस्मात् जिस दिन भूल हो जाती, अर्थात् स्त्री को बुला-

कर चद्दर उसके हाथों में देने की बजाय खुद हैंगर में टांग देते, उस दिन मलिना को अच्छा नहीं लगता। मुंह खोलकर कुछ नहीं बोलती, लेकिन हाव-भाव या अन्य किसी काम के द्वारा वह अप्रसन्नता का भाव प्रकट हो ही जाता।

४

कालेज की नौकरी छोड़ कलकत्ता आकर जब से हिमांशु मर्चेंट आफिस में आफिसर की हैसियत से नियुक्त हुए, तभी से उनकी जीवन-यात्रा का तरीका एकदम बदल गया। वहां पर पति के कामों में मलिना का जो थोड़ा-बहुत हाथ था, वह अब नहीं रहा। हर क्षेत्र में एक-एक करके बाहर के लोग बीच में आकर खड़े होते गए। वे ही रसोई बनाते, टेबिल पर खाना सजाते, स्नान के लिए तैयारी करते, कपड़े तह करते—उनसे सम्बन्धित सारे दायित्व एक के बाद एक अपने कन्धों पर लेते जाते, उनमें सहायता करते, जूतों के फीते बांध देते, आफिस से लौटने पर दौड़कर टोपी पकड़ते, कोट खोल देते तथा फाइल-पत्र समेटकर यथास्थान रख देते। मलिना उनके काम-काज का निरीक्षण करती, त्रुटियां पकड़ती, खोज-खबर लेती, कभी हुक्म, कभी उपदेश देती—यहीं तक। इस दीर्घ सिलसिले में उसके खुद के हाथों का स्पर्श कहीं नहीं था। इसके लिए पति को शिकायत है, ऐसा भी नहीं लगा। एक दिन किसी तरह जो कुछ जोड़ा था, आज उसका नामो-निशान भी नहीं है, इसका आभास उनकी बातों से कभी नहीं मिला। व्यवहार में तो दूर की बात है, चेहरे पर भी इसका भाव दिखाई नहीं दिया। जैसे यही स्वाभाविक था। जैसे इसी तरह हमेशा से चलता आया है।

यह अधिकार-हस्तान्तरण का कार्य एक दिन में या अकस्मात् नहीं हुआ था। धीरे-धीरे बहुत कुछ अपने-आप, अदृश्य में, अनजाने में दोनों के बीच यह दूरत्व का रास्ता विस्तृत हो उठा था। प्रतिदिन मलिना यह अनुभव कर रही थी कि पति के जीवन में उसका इतने दिनों का जो सम्बन्ध था, वह क्रमशः क्षीण होते-होते क्षीणतर हो गया है। सिर्फ बाहरी ही नहीं, आन्तरिक भी। जैसे पति के मन से भी वह तेज़ी से हटती जा रही है। हो सकता है, एक दिन पूर्णतः हट जाना पड़ेगा। वह मन को यह कहकर

दिलासा देती कि यदि ऐसा ही हुआ भी, तो उससे जीवन में जिस शून्यता की सृष्टि होगी, वह बहुत ज़्यादा गहरी नहीं होगी।

पहले-पहल कभी-कभी जब यह भावना मलिना के मन में आ जाती, हठात् जैसे वह अपने दौलतपुर अध्याय में लौट जाने के लिए सचेष्ट हो उठती। नौकर-चाकर भयभीत हो जाते। कब, किसके काम में मालकिन का हाथ पड़ेगा, समझ नहीं पाते।

एक दिन की बात है। सुबह साढ़े आठ बजे आफिस जाने से पहले हिमांशु ड्रेसिंग टेबिल के सामने खड़े टाई बांध रहे थे। अन्य दिनों तो इस समय पति का खास प्रिय सेवक निशिकान्त कोट हाथ में लिए पीछे तैयार खड़ा रहता था और टाई बांधने के पश्चात् मालिक के दोनों हाथ नीचे उतरते ही उन्हें पहना देता। आज उसकी जगह पत्नी को देखकर गुप्ता साहब की आंखों में आश्चर्य का भाव फूट पड़ा। बोले, "निशी कहां गया?"

"जाएगा कहां। घर पर ही है।"

"तब फिर···"

"तब फिर क्या, यही कि मैं क्यों आई? क्यों, क्या मैं कोट भी नहीं पहना सकती?"

हिमांशु ने कोई जवाब नहीं दिया। वे टाई बांध चुके थे। अन्य दिनों तो दोनों हाथ तत्काल पीछे चले जाते। लेकिन आज नहीं गए। जैसे उसके पति भूल गए हों कि अब क्या करना है। मलिना कोट की आस्तीन पकड़े प्रतीक्षा कर रही थी। डांटकर बोली, "क्या हुआ? लाओ, हाथ बढ़ाओ।"

हिमांशु हठात् सजग हो उठे। कोट पहना दिया गया। नौकर जैसे पहनाता है, उससे अच्छी तरह ही पहनाया गया था। फिर भी अन्य दिनों की तरह हिमांशु ने सहजता महसूस नहीं की। हाथों से बार-बार गले को छूने लगे। मलिना ने भी इसे गौर किया। उसे याद आया—पीछे से उसने कभी कोट नहीं पहनाया, किसी समय सीने के पास खड़े होकर इसी मनुष्य को वह कुर्ता पहनाती थी, बटन लगाकर, चद्दर सयत्न कन्धे पर सहेज देती थी। उस समय शरीर में या मन में आज की तरह सिकुड़न का चिह्न-मात्र भी दिखाई नहीं देता था।

जीवन में उन्नति के लिए जिन-जिन गुणों की आवश्यकता होती है,

हिमांशु गुप्ता के पास उनमें से किसीका अभाव नहीं था। लगन, दृढ़ विश्वास, ईमानदारी, मेहनत और लगातार प्रयत्न तथा सुदृढ़ आत्मविश्वास ने उन्हें अपने-आप ऊंचा उठा दिया था। ज्यों-ज्यों एक-एक स्तर पार होते गए, त्यों-त्यों पति-पत्नी का आन्तरिक मिलन-सूत्र भी शिथिल ही पड़ गया। पहले-पहल तो मलिना यह सोच ही नहीं पाती थी कि बीच की इस दूरी को किस तरह कम किया जाए। कभी-कभी उसके लिए ऐसी अवस्था असह्य हो उठती थी। खुद को प्रताड़ित और अवहेलित महसूस करती, खेद से, अभिमान से क्रोधित हो जाती, समय-असमय पति को आघात पहुंचाए बिना नहीं चूकती। यदि उसके बदले प्रत्याघात मिलता तो थोड़े-से कड़ुवेपन की सृष्टि होने पर भी शायद आन्तरिक शान्ति मिलती। पारस्परिक सम्पर्क में सजग होने का अवसर मिलता। लेकिन हिमांशु साधारणतः किसी भी दोषारोप का उत्तर नहीं देते। हो सकता है, उसकी सत्यता अस्वीकार नहीं की जा सकती थी, इसीलिए चुपचाप मान लेते। या इतनी दूर हट गए थे कि यह सब उन्हें बुरा नहीं लगता। लेकिन मलिना को लगता कि चुपचाप यह सब सह लेना उसके प्रति एक तरह की उपेक्षा और अवहेलना है। जिस पति को किसी भी तरह उकसाया नहीं जा सकता, उसे लेकर घर कैसे बसाया जा सकता है।

एक ओर हिमांशु अत्यन्त सतर्क थे। उन्होंने अपनी पत्नी की सुविधा के लिए अनुचर, दौलत इत्यादि सब तरह की व्यवस्था कर दी थी, जिसके फलस्वरूप उसे कलकत्ते के कुलीन सम्पत्तिशाली समाज के उच्च महलों में बाधारहित विचरण का सुयोग उपलब्ध था। कुछ दिनों तक मलिना उसीमें अपने को रमा देनेकी चेष्टा करती रही। लेकिन दो कारणों से वह उसमें पूरी तरह हिल-मिल नहीं सकी। पहला तो यह कि उस उच्चवर्ग में वास्तव में मर्यादा और प्रतिष्ठा हासिल करने के लिए पति-पत्नी की जोड़ी बिना ज़्यादा दिन नहीं चल सकता था। दूसरा यह कि उस समाज का परिवेश एवं उससे सम्बन्धित अदब-कायदे, रीति-रिवाज उसे बहुत ज़्यादा कृत्रिम और सारहीन-से लगे; फलस्वरूप कुछ दिनों में ही उसे इन सबसे एक ऊब और घृणा-सी हो गई।

हिरन तब बड़ा हो गया था। कालेज एवं उससे बाहर, क्लब में, खेल के

मैदान में उसके दोस्तों एवं प्रेमियों की संख्या कम नहीं थी। उनका एक दल घर में बराबर आता-जाता रहता था, एवं उनमें से जिनसे उसकी अधिक घनिष्ठता थी, उन्हें वह कभी-कभी मां के पास भी खींच लाता था। मलिना उन्हें यत्न से बैठाती, अनेक प्रकार का खाना बनाकर खिलाती और जब वे किसी एक विषय पर किसी खास उद्देश्य को लेकर तर्क-वितर्क कर बैठते (इस उम्र में जैसा प्रायः होता है), तब एक कोने में चुपचाप सिलाई लेकर बैठ जाती और सुनती रहती। हठात् किसीको ख्याल आता, तो वह बोल उठता, "मौसी, आप तो कुछ बोलती ही नहीं हैं।" मलिना हंस पड़ती, "मैं क्या बोलूं ? मैं क्या तुम लोगों की तरह लिखना-पढ़ना जानती हूं ?" वे यह बात स्वीकार नहीं करना चाहते। तर्क में एक मत होना दोस्ती का नियम नहीं है। मतभेद तीव्र हो जाने पर मौसी को ही वे मध्यस्थ मान बैठते और जहां-जहां मतान्तर होता, तो निर्णय और सलाह का भार उसीपर डाल देते। तब दूर रहना सम्भव नहीं होता। अपनी बुद्धि एवं ज्ञान के अनुसार उसकी जो सम्मति होती, प्रकट किए बिना नहीं रह पाती। कई बार लड़के अवाक् हो जाते। कभी बोलते, "क्या आश्चर्य है। इतनी देर तक हम लोग असली पाइंट ही नहीं पकड़ सके, और मौसी ने एक बात में ही सारी गुत्थी सुलझा कर रख दी।"

लड़कों में से शोभन ही सबसे ज़्यादा निकट सान्निध्य में आया था। हिरन के साथ आई० एस-सी० पास करने के बाद कालेज से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाने पर भी उससे बाहर उनकी घनिष्ठता और भी बढ़ गई थी। हिरन जब शिवपुर चला गया, तब भी वह नियमित रूप से मलिना के पास आ बैठता। कभी-कभी अपना पुराना दल भी खींचकर ले आता और तर्क का समां बंध जाता। उसके तर्क के विषय विचित्र होते थे। एक दिन खड़े होकर उसने प्रस्ताव किया, "आज हम लोगों की 'डिबेट' का सब्जेक्ट रहेगा—बंगालियों की असली पोशाक क्या है—शर्ट या कुर्ता ? शर्ट के पक्ष में कौन-कौन है, हाथ उठाओ।"

एक दल ने हाथ उठाया। तब आदेश आया, "अच्छा, तुम लोग बाईं ओर चले जाओ। और 'कुर्ते' वाले दाहिनी ओर खिसककर बैठ जाएं।" फिर मलिना की ओर घूमकर बोला, "मौसी, तुम चेयरमैन हो। बता दो,

कौन कितने मिनट बोलेगा ? उसके बाद सम ग्राफ दि प्रोसीडिंग्स । तुम्हारा खुद का मत क्या है, यह भी बता देना ।"

सभी ने एक स्वर में सर्वसम्मति से समर्थन किया । मलिना बोली, "अरे, मैं क्या मत दूंगी ? मैं इनमें से क्या पहनती हूं ?"

सब हंस पड़े । शोभन बोला, "पहनती नहीं हो, इसीलिए तो तुम्हारा मत एकदम इम्पारशियल होगा ।" कहकर एक प्रकार से ज़बर्दस्ती ही उसे बीच में बैठा दिया । खुद भी उसके पास बैठने जा रहा था कि दोनों ओर से प्रबल ग्रापत्ति की आंधी ग्राई, "वहां क्यों ? इधर ग्राकर बैठो ।" अर्थात् शर्ट या कुर्ता—दोनों दल उसे पाना चाहते थे । शोभन गम्भीर होकर भाषण देने के अन्दाज़ में बोला, "दोस्तो, मैं बंगाली ज़रूर हूं लेकिन तुम लोगों की तरह भात खानेवाला बंगाली नहीं हूं । मैंने तय किया है कि शर्ट और कुर्ता दोनों को छोड़कर चूड़ीदार पाजामा और अचकन पहनूंगा । ग्रतएव मैं न्यूट्रल हूं ।"

हंसी का ठहाका उठा । लेकिन शोभन की यह न्यूट्रल पोज़ीशन कोई भी पक्ष मानने को तैयार नहीं था । हो-हल्ला शुरू हो गया ग्रौर ग्रन्त में दोनों ओर से चेयरमैन के मत की मांग की गई । मलिना ने राय दी, "यहां यह विवेच्य नहीं है कि भविष्य में या व्यक्तिगत रूप से किस समय कौन क्या पोशाक ग्रहण करेगा । यह तर्क देकर इस सभा को ग्रपने मत से वंचित करने का अधिकार किसीको नहीं है ।"

घोर उल्लास-ध्वनि के बीच शोभन को एक दल में जाकर बैठ जाना पड़ा ।

·

इनके बीच आकर मलिना को एक नये जीवन का रहस्य मिला, एक नया ग्राधार मिला । लड़का गंगा के उस पार रहता था इसलिए हर समय परिवार में रहने के लिए नहीं ग्रा सकता था । आता भी तो ज़्यादा से ज़्यादा एक रात के लिए । पति कब जाते, कब आते, कब कहां रहते, उनकी क्या-क्या जरूरतें हैं—इनमें से किसीके साथ भी उसका सम्बन्ध नहीं था । ऐसे जीवन से वह पूर्ण रूप से ऊब गई थी । चारों ग्रोर की शून्यता के इस

राक्षस से शोभन ने ही उसे बचाया। उससे ही सबसे पहले सुना, औरतों के लिए घर-बार ही सब कुछ नहीं है, बाहर औरतों का 'पत्नी' के अलावा दूसरा परिचय भी है ; 'पुरुषों' के विशेष नियम-कानूनों का प्रयोग 'औरतें' भी कर सकती हैं। ये बातें नई नहीं थीं; लेकिन मलिना को इनके बीच आकर एक नया अनुभव मिला। इतने दिनों तक घर-गृहस्थी से जो उसका लगाव था, वहां दरार दिखाई दी। क्रमशः वह इन सबसे और भी दूर हट गई। उसने शोभन एवं उसके दल की नाना प्रकार की आवश्यकताओं और योजनाओं के बीच धीरे-धीरे मन लगाना शुरू कर दिया।

लड़की तब बड़ी हो गई थी। अपने पिता की सामाजिक पद-मर्यादा के सम्बन्ध में वह सावधान हो गई थी। उसकी मां अपने स्तर के प्राणियों में न मिलकर साधारण श्रेणी के युवकों का दल लेकर घूमती-फिरती थी—यह उसे अच्छा नहीं लगा। अच्छा न लगने की इस भावना को उकसाने वालों की कमी नहीं थी। मां के उम्र की या आसपास के उम्र की कुलीन घराने की महिलाएं, जिनके साथ किसी समय मां उठती-बैठती थी, उन्होंने अवसर देखकर घर में आकर खोज-खबर लेनी शुरू कर दी। वे बारी-बारी से आती थीं—किसी दिन मिसेज़ घोष, किसी दिन मिसेज़ तरफदार। और उनके आने का समय वही रहता जब मलिना अनुपस्थित रहती।

ऐसे ही एक दिन जब घर की मालकिन बाहर चली गई तब अवसर देखकर मिसेज़ घोष आई और घर में घुसते ही सोफे पर बैठती हुई बोल उठी, "अपनी मां को जल्दी से बुलाओ, सीमा। यहां से मुझे अभी मिसेज़ भादुड़ी के पास जाना है।"

"मां तो घर में नहीं हैं।"

"अच्छा! कहां गई है इस भरी दोपहर में?"

सीमा चुप है, यह देखकर चेहरे पर तिरस्कार का भाव लाती हुई बोली मिसेज़ घोष, "शायद उन्हीं छोकरों के साथ गई हैं? धन्य है उनकी रुचि तो। मैं होती तो सात जन्म में भी उन लोगों की छाया नहीं पड़ने देती। अच्छा, ये लोग करते क्या हैं? कहां जाते हैं?"

सीमा ने होंठ उलटकर हाथ की उंगलियों के इशारे से बताया कि वह नहीं जानती। मिसेज़ घोष बोली, "तो तुम घर में अकेली बैठी-त्रैठी क्या

करोगी ? इससे तो अच्छा है चलो, मधु के साथ बातें ही करना। दो घंटे बाद पहुंचा दूंगी।"

शायद सीमा की जाने की इच्छा नहीं थी। फिर भी मौसी की बात को टाल नहीं सकी। कभी-कभी मां पर गुस्सा करके अपनी इच्छा से चली जाती कि मां तो सातों लोक में गाना-बजाना, सभा-पार्टी करती घूमेंगी-फिरेंगी, फिर भला वह घर में अकेली बैठी क्या मक्खी मारती रहे।

मलिना लौटती तो रंगे हाथों इसका प्रमाण मिलता कि मां से मौसी का दर्द ज़्यादा है। मौका मिलते ही 'मौसी लोग' स-शरीर आ पहुंचतीं और फिर उसकी मां के सामने इस बात का प्रदर्शन करतीं कि बेचारी लड़की अकेली मन मारकर बैठी थी, इसलिए ज़रा घुमा-फिरा लाईं।

दो-चार दिनों तक मलिना ने देखा, फिर एक दिन बाहर जाते समय लड़की को बुलाकर बोली, "मैं ज़रा बाहर जा रही हूं। जब तक न लौटूं कहीं मत जाना, कोई लेने आए तो भी नहीं।"

"लेकिन मुझे तो आज कृष्णा के घर जाना है। उस दिन मौसी बहुत ज़ोर देकर कह गई थीं।"

"उसे टेलीफोन कर दो कि नहीं आ सकूंगी।"

"क्यों ?" सीमा के कण्ठ से प्रच्छन्न प्रतिवाद का स्वर निकला।

"क्यों का मतलब ?" क्रोधित होती हुई बोली मलिना, "तुम अब बड़ी हो गई हो। तुम्हारी उम्र की लड़कियों को इधर-उधर हंसी-ठट्ठे करते घूमना शोभा नहीं देता।"

"वाह ! मैं भला इधर-उधर कहां जाती हूं ?"

मलिना अपनी बात का सूत्र पकड़े ही बोली, "और फिर, कृष्णा का भाई सुजीत अच्छा लड़का नहीं है। उसके साथ तुम्हारा किसी तरह का मिलना-जुलना मुझे पसन्द नहीं है।"

"क्यों, क्या किया सुजीत ने ?"

मलिना ने चलना शुरु कर दिया था लेकिन सीमा का प्रश्न सुनकर हठात् घूमकर खड़ी हो गई। उसकी दोनों आंखों में आश्चर्य का भाव फूट पड़ा। जिस लड़के को वह पसन्द नहीं करती, जिसके साथ मिलने के लिए स्पष्ट रूप से मना कर दिया, उसका पक्ष लेकर लड़की अपनी मां के साथ

तर्क करेगी, यह उसकी कल्पना के बाहर था। नीचे से शोभन का तकाज़ा सुनाई पड़ा। रुकने का समय नहीं था। किसी तरह खुद को संयत करके बोली, "इस बारे में मैं तुमसे बहस नहीं करना चाहती। जैसा मैंने कहा है, वैसा ही करो।"

लड़की को और कुछ बोलने का अवसर न देकर मलिना तेज़ी से नीचे चली गई। सीमा स्तब्ध-सी वहीं खड़ी रही।

उस दिन आफिस से लौटने के पश्चात् रात के समय गुप्ता साहब जब अपने सोने के कमरे के सामने वाले बरामदे में विश्राम कर रहे थे, ईज़ी चेयर के हत्थे पर पड़े काफी के प्याले से धुआं उठ रहा था, तब सीमा आकर उनके सिर के पीछे खड़ी हो गई। लड़की पर उनका विशेष स्नेह केवल इसीलिए नहीं था कि वह उनकी एकमात्र कन्या एवं कनिष्ठ संतान थी बल्कि इसके अलावा एक कारण और भी था—सीमा लिखने-पढ़ने में अच्छी थी, फर्स्ट-सेकेण्ड न आने पर भी नाम हमेशा ऊपर ही रहता था। वे खुद बहुत ही तेज़ छात्र थे, किसी भी परीक्षा में उन्हें शीर्ष से नीचे नहीं उतरना पड़ा था। मन ही मन एक गोपनीय आकांक्षा थी, दो सन्तानों में से कम से कम एक तो उनकी तरह बन जाए।

लड़की की ओर देखते ही उसके चेहरे की स्तब्धता का भाव नज़र आया। बोले, "वहां क्यों खड़ी हो? सामने आकर बैठो और क्या नई खबर है सुनाओ।"

सीमा के सामने आकर खड़ी होते ही ज़रा उत्कंठित स्वर में बोले, "क्या हुआ?"

"मुझे आप होस्टल में भेज दीजिए, पिताजी।"

"होस्टल में!" गुप्ता साहब के माथे पर सलवटें पड़ गईं, "क्यों?"

"यहां मेरी पढ़ाई-लिखाई नहीं होती।"

"पढ़ाई-लिखाई नहीं होती? यह क्या कह रही हो?"

इस बार हिमांशु सचमुच चिन्तित हो गए। सीमा का टेस्ट हो गया था। दो महीने बाद मैट्रिकुलेशन की परीक्षा थी। ऐसे समय में एक क्षण भी नष्ट होना उचित नहीं होता। बोले, "क्या असुविधा है, मुझे बताओ।"

"यहां वहुत शोरगुल होता है।"

हिमांशु ग्राश्चर्यचकित हो गए, "कैसा शोरगुल ?"

तत्काल उत्तर न मिलने पर बोले, "नौकर-चाकर चिल्लाते हैं ? उन्हें डांट देना।"

"नहीं, वे भला शोरगुल क्यों मचाएंगे।"

"तव फिर ?"

"यही वे लोग," कहकर ऊपर वाले हाल की ओर आंखें उठाईं, "प्रायः रोज़ ही तो कुछ न कुछ लगा रहता है। कभी डिवेट तो कभी रिहर्सल तो कभी और कुछ। आपके आफिस जाते ही शुरू हो जाता है।"

हिमांशु का चेहरा गंभीर हो उठा। मोटे तौर पर इस दल के बारे में वे जानते थे लेकिन उसकी विशिष्ट गतिविधियों या कार्य-कलापों के बारे में उन्हें कोई विशेष रुचि नहीं थी। इसलिए कभी उत्साह महसूस नहीं किया। वे यह नहीं जानते थे कि इनके तुच्छ ग्रौर ग्रर्थहीन ग्रामोद-प्रमोद के पीछे मलिना के बहुत सारे समय ग्रौर धन का ग्रपव्यय होता रहता है।

थोड़ी देर कुछ सोचकर बोले, "एक काम किया जा सकता है। निशी से कह देता हूं, इस कोने वाले कमरे में मेरी जो चीज़ें हैं, उन्हें हटाकर तुम्हारे पढ़ने की कुर्सी-टेविल वहां लगा दे। इतनी दूर उनका शोरगुल नहीं पहुंचेगा।"

"यह कैसे हो सकता है ? आपके इतने सारे कागज़-पत्र कहां जाएंगे ?"

"कहीं भी रख देने से काम चल जाएगा। वे रोज़ तो मेरे काम आते नहीं हैं।"

सीमा का चेहरा देखने से लगा कि वह ग्रौर भी कुछ बोलना चाहती है, लेकिन वोले या नहीं, सोच नहीं पा रही है। हिमांशु कुछ देर उसकी सम्मति-असम्मति की प्रतीक्षा करके बोले, "फिलहाल तो इसे छोड़कर और कोई रास्ता दिखाई नहीं देता। उसके बाद सोचकर देखेंगे।"

"यह दल मुझे अच्छा नहीं लगता है, पिताजी। शोभन भैया या भैया के जो पुराने मित्र हैं, उनकी बात नहीं कह रही हूं। नयों में दो-चार लोग कुछ आगे बढ़ने की चेष्टा कर रहे हैं।"

"क्यों ? क्या कर रहे हैं वे ?" हिमांशु चिन्तित स्वर में बोले।

"चिट्ठी पढ़कर देखो। पहले एक और मिली थी, मैंने फाड़कर फेंक दी…"

अांचल के पीछे से एक मोड़ा हुआ कागज़ निकालकर कुर्सी के हत्थे पर रखकर सीमा जाने लगी। दो-एक पैर बढ़ाकर फिर लौट आई और बोली, "मां को ये सब बातें मत बताइएगा। उलटे मुझे ही डांट सुननी पड़ेगी।"

हिमांशु ने भौंहें सिकोड़कर चिट्ठी खोली और पढ़ने लगे। ऊपर कोई ठिकाना नहीं लिखा था, सम्बोधन भी नहीं था, जहां लिखने वाले का नाम रहता है, वहां जगह भी खाली थी। बीच में खूब सहेज-सहेजकर लिखी गई कुछ लाइनें थीं।

" रवीन्द्रनाथ को सीमा के बीच अनन्त रहस्य का भेद मिला था। वह कवि की कल्पना थी। मैंने खुद की आंखों से देखा है। मैं जिस सीमा को जानता हूं, उसकी अांखों के नक्षत्र में मुझे असीम आह्वान का दर्शन मिला है। किन्तु दूर से देखकर क्या तृप्ति मिल सकती है? उससे क्या मन भर सकता है? सीमा क्या हमेशा मेरी तरह के नाचीज़ भक्तों की सीमा से बाहर ही रह जाएगी, क्या एक बार भी पास आकर खड़ी नहीं होगी? उसकी आंखों के प्रसाद से और कितने दिनों तक वंचित रहना पड़ेगा?

" कब कहा मुलाकात हो सकेगी, बताने पर कृतज्ञ होऊंगा। रास्ता देखता रहूंगा। पहचान तो सकती हो न ? "

चिट्ठी पढ़ने के पश्चात् हिमांशु इतने बेचैन हो गए थे कि अनमनी अंगुलियों के दबाव से मुड़-मुड़कर वह चिट्ठी कब एक छोटे-से कागज़ की पुड़िया में परिवर्तित हो गई, इसका ध्यान ही नहीं रहा। हठात् हाथ की अोर नज़र पड़ते ही उन्होंने लड़की को बुला भेजा, और उसके आते ही चिट्ठी दिखाकर बोले, "यह तुम्हारे पास कैसे पहुंची ? डाक द्वारा ?"

"नहीं, निशी के हाथों से भेजी गई थी।"

"निशी के हाथों से ?"

"उसका क्या दोष है ? उससे कहा गया, यह कागज़ दीदी को दे देना और कहना, अमल बाबू ने दिया है।"

"तुम्हारी मां घर में है ?"

"अभी तक लौटी नहीं है।"

गुप्ता साहब रोज़ दस बजे सो जाते थे। उस दिन सोने नहीं गए। कितनी भी रात क्यों न हो जाए, आज पत्नी के साथ इस विषय में बात करनी ज़रूरी थी। नीचे का क़ाम खत्म करके मलिना कब ऊपर आएगी, इसी अपेक्षा में जागते बैठे रहे। उन दोनों के सोने के कमरे पास-पास थे।

उस दिन मलिना का एक कार्यक्रम था। जब लौटी, उस समय रात के ग्यारह बज रहे थे। शोभन साथ था। इतनी रात में उसे खिलाए बिना नहीं जाने दिया। खाने के बाद दोनों ड्राइंग रूम के सामने वाले बरामदे में जाकर बैठ गए। बातों ही बातों में कब रात ज़्यादा बीत गई, किसीको ख्याल ही नहीं रहा। हठात् पास ही कहीं पर बजाए गए घंटे की आवाज़ सुनाई पड़ते ही शोभन उछल पड़ा, "सत्यानाश हो गया। अब घर कैसे जाऊंगा!"

मलिना ने किसी भी तरह की बेचैनी नहीं दिखाई। घड़ी की ओर देखकर बोली, "आज जाना नहीं होगा। हिरन के कमरे में बिस्तर बिछा हुआ है, सो जाओ। कल आराम से उठकर ब्रेकफास्ट लेकर ही जाना। कहो तो तुम्हारी मां को फोन कर दूं।"

शोभन फिर बैठते हुए बोला, "एक बजे रात में टेलीफोन। मां इस तरह शोरगुल शुरू कर देगी कि मोहल्ले के लोग सोचेंगे, डाका पड़ा है। लाल बाज़ार से पुलिस आ जाएगी।"

"बिना खबर दिए चिन्ता नहीं करेंगी क्या?"

"मेरे लिए कोई चिन्ता नहीं करता।" सोफे पर अपना शरीर डालते हुए थके स्वर में बोला शोभन। फिर मलिना की ओर देखकर मृदु हंसते हुए बोला, "उसे छोड़, मां जानती है कि जब तुम्हारे पल्ले पड़ा हूं···।"

इतनी रात गए पति को बरामदे में ईज़ी चेयर पर बैठे देखकर मलिना अपने कमरे में घुसते-घुसते देहलीज पर खड़ी हो गई। पहले सोचा, जाकर कारण पूछूं। फिर सोचा, उन्हें कुछ कहना होता, तो बहुत पहले ही बुलाकर कह सकते थे। जब उन्होंने नहीं बुलाया तो खुद अग्रणी होकर बेकार

का आग्रह करने की क्या ज़रूरत है ? जब दरवाजा पार कर रही थी तब गम्भीर परिचित स्वर सुनाई पड़ा, "ज़रा इधर आना तो।"

मलिना धीरे-धीरे पास आकर खड़ी हो गई। हिमांशु बोले, "तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था। यदि जानता कि इतनी रात हो जाएगी..."

इतनी रात करने की इच्छा मलिना की भी नहीं थी। लेकिन इस चीज़ को दिखाने के लिए पति जागते बैठे हैं, उसे बुलाकर सुना रहे हैं, यह उसके लिए और भी असह्य हो गया। असल में वे क्या कहना चाहते हैं, इतना सुनने का भी धैर्य नहीं रहा। बीच में ही क्रोधित स्वर में बोल उठी, "हां, रात ज़रा ज़्यादा हो गई। इसके लिए क्या करना पड़ेगा, सुनूं तो ?"

हिमांशु इस अकारण क्रोध का मतलब नहीं समझ सके और आश्चर्य-चकित दृष्टि से मलिना के चेहरे की ओर देखने लगे। वहां भी जब कुछ नहीं मिला तो खुद के वक्तव्य पर सीधी तरह प्रकाश डाला, "कह रहा था कि यहां यह सभा-समितियां कुछ दिनों तक बन्द करने की ज़रूरत है।"

"क्यों ? इनसे तुम्हें क्या नुकसान है ?"

"मुझे नहीं, लड़की की पढ़ाई में क्षति होती है।"

"लड़की-की-पढ़ाई-में-क्षति।" शब्दों पर जोर देती हुई बोली मलिना। "जैसे पढ़ाई-लिखाई सिर्फ तुम्हारी लड़की ही करती है, और किसीने नहीं की। लेकिन यह बात लड़की मुझसे भी तो कह सकती थी।"

"यह उसके कहने का विषय नहीं है। मेरे देखने की चीज़ है।"

"ओह, यह बात है !" कमरे की ओर पैर रखते हुए बोली मलिना। तत्काल पीछे घूमकर बोली, "क्या इतनी-सी बात कहने के लिए इतनी रात तक जागते बैठे हो ?"

प्रश्न में जो श्लेष था, हिमांशु उसका बिलकुल अर्थ नहीं समझे, यह बात नहीं है। बोले, "बात ज़रूरी थी, इसीलिए जागना पड़ा। इससे पहले तो तुमसे मुलाकात हो नहीं सकती।"

"इसका मतलब ?" पति के चेहरे पर प्रज्वलित दृष्टि डालकर जानना चाहा मलिना ने।

बिना उत्तर दिए हिमांशु को खुद के कमरे की ओर पैर बढ़ाते देख आगे बढ़कर रास्ता रोकते हुए बोली, "नहीं, बचकर जाने से नहीं चलेगा।

क्या कहना चाहते हो साफ-साफ कहो।"

"क्या कहना चाहता हूं, यह तुम निश्चित रूप से समझ रही हो।"

"शायद मैं समझ तो रही हूं। फिर भी तुम्हारे मुंह से सुनना चाहती हूं। सीधी बात क्यों नहीं कहते कि मेरे चलने-फिरने से, काम-काज से तुम्हें आपत्ति है।"

"यह बात नहीं है। तुम्हें लेकर मैं माथा-पच्ची नहीं करता, तुम्हारे किसी काम में आपत्ति या समर्थन की बात ही नहीं उठती। फिर भी ये सब बातें स्वाभाविक नहीं हैं, शायद तुम भी अस्वीकार नहीं करोगी।"

"लेकिन क्यों ? किसलिए मुझे यह अस्वाभाविक रास्ता अपनाना पड़ा, कभी सोचा है ? इसके लिए ज़िम्मेदार कौन है ?"

"तुम ज़रूर यही कहोगी कि इस सबका ज़िम्मेदार मैं हूं।"

"सिर्फ मैं ही क्यों कहूंगी ? सभी यही कहेंगे। क्या दिया है तुमने मुझे ? पन्द्रह साल की उम्र में तुम्हारे घर आई थी। आज बूढ़ी होकर मरने जा रही हूं। ज़िन्दगी-भर अपने देह-प्राण एक करके तुम लोगों का मन ले-लेकर एक दासी की तरह गुलामी का जीवन व्यतीत किया, इसके बदले में मुझे क्या मिला ?"

"शायद इसीलिए तुमने रास्ता बदल दिया है ? अच्छा ही तो है, इतने दिनों तक जो नहीं मिला, शायद अब मिल जाएगा।"

हिमांशु की इन बातों में शायद एक व्यंग्य का पुट था जिसका आभास पाकर मलिना दप् से जल उठी, "मिलेगा क्यों, मिल गया। ये लड़के, जो तुम्हें आंखों देखे नहीं सुहाते, इन्होंने ही मुझे जीवित रहने का रास्ता दिखाया है। यही शोभन, जिसने पूरी पढ़ाई भी नहीं की, इसलिए तुम इससे मन ही मन घृणा करते हो, इसीने मुझे सबसे पहले सिखाया कि जीवन का अर्थ क्या है, जो तुम्हारे जैसे विद्वान पति के मुंह से भी मैं कभी नहीं सुन सकी। तो भी, उसे लेकर कम बातें नहीं उठीं। वह मेरे पास रोज़ आता है, बहुत देर तक बैठे-बैठे बातें करता है, इधर-उधर ले जाता है, उसके साथ···।"

"रहने दो, ये सब अश्लील बातें मैं नहीं सुनना चाहता।"

"अश्लील बातें ! तो तुम भी इन सब में विश्वास करते हो !"

"क्या मुश्किल है। मैं क्या इन्हीं सब बातों···"

"रहने दो, ज़्यादा वनने की जरूरत नहीं है।" पति का मृदु स्वर डुबाती हुई गरज उठी मलिना, "ये सब तो अश्लील बातें हैं, और तुम्हारे बारे में जो सुना है, वह पूरी पवित्र रामायण है ?"

"मेरे बारे में ?" चकित हो आंखें उठाईं हिमांशु ने।

"हां, तुम्हारी उसी नई रक्खी गई सुन्दरी स्टेनो को लेकर···"

"मलिना !" गुप्ता साहब की दोनों आंखों से अग्नि बरस पड़ी। पति का यह रूप मलिना ने आज से पहले कभी नहीं देखा था। कुछ देर तक तो उसमें बोलने की शक्ति ही नहीं रही। तुरन्त बाद ही खुद को सम्भालकर कुछ बोलने जा रही थी कि उससे पहले ही दरवाज़े के दोनों भारी पल्ले धड़ाम से उसके मुंह के सामने बन्द हो गए।

हिमांशु गुप्ता की दैनिक रुटीन में कोई रद्दोबदल नहीं हुई।

दूसरे दिन समयानुसार नींद टूटने के बाद नियमानुसार ठीक साढ़े ग्राठ बजे उनकी गाड़ी ग्राफिस की ओर रवाना हो गई। रसोइया, नौकर, बेयरा, ड्राइवर ने साहव को आज भी वैसे ही देखा जैसे रोज़ देखते थे। उनके चेहरे पर, बातचीत में—जो दो-एक मामूली-सी बातें उन्होंने कीं—उनमें क्रोध, थकावट या उदासीनता का चिह्नमात्र भी नहीं था। लेकिन उनके पासवाले कमरे की घड़ी का कांटा पीछे रह गया। ग्रन्य दिनों की ग्रपेक्षा आज बहुत देर से स्नानादि से निवृत्त होकर जब मलिना नीचे उतरी, उसके बहुत पहले से ही शोभन तैयार होकर बैठा था और मलिना की प्रतीक्षा कर रहा था। उसके कमरे में घुसते ही उल्लास से बोल उठा, "वाह! कल तो कह रही थीं कि तुम्हें ही मुझे खींचकर उठाना पड़ेगा, और···यह क्या, तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है क्या ?"

"ठीक है।"

"लेकिन चेहरा देखने से तो लगता है···"

"सुनो, परसों दोपहर के समय यहां पर तुम लोगों की जो सभा होने वाली है, उसे स्थगित कर दो।"

"वह तो करनी ही पड़ेगी। हठात् तुम्हारी तबीयत खराब हो गई है,

इस अवस्था में भला…"

"मेरी तबीयत ठीक है। और शुक्रवार को जो रिहर्सल होने वाली थी उसकी भी कहीं और व्यवस्था करो।"

"क्यों ?"

"आगे से फिर कभी इन सब चीज़ों में मुझे मत खींचना।" कहकर मलिना दूसरी ओर जा रही थी कि शोभन उठ पड़ा और सामने जाकर बोला, "तुम्हें हो क्या गया है, बताओ न मौसी ?"

"होगा क्या ?" हंसने की चेष्टा करती हुई बोली मलिना, "ऐसे ही, अच्छा नहीं लग रहा है।"

शोभन ने और कोई प्रश्न नहीं किया। गत रात की घटना के बारे में वह नहीं जान सका। बिस्तर पर पड़ते न पड़ते ही उसकी आंख लग गई थी। जागता रहता तो भी ऊपर का तूफान नीचे तक नहीं पहुंचता। फिर भी यह समझने में उसे कोई असुविधा नहीं हुई कि केवल अच्छा न लगने से रातों-रात इतना बड़ा परिवर्तन असम्भव है। शायद इसके पीछे कोई बड़ा कारण है। शायद क्यों, निश्चय ही इस आकस्मिक परिवर्तन की सूक्ष्म डोरी मलिना के दाम्पत्य जीवन के जटिल जाल में बंधी हुई है। किन्तु ऐसा क्या घट सकता है जिसके फलस्वरूप एक मनुष्य आधी रात में अकेले कमरे में सोने गया और कुछ घंटे बीतते न बीतते ही उसकी जगह एक दूसरा मनुष्य द्वार खोलकर बाहर निकला।

शोभन जब यह सब आकाश-पाताल की बातें सोच रहा था, तब जैसे हठात् मलिना को ख्याल आया हो ऐसे भाव से बोली, "तुमने चाय ली ?"

"रहने दो, अभी तो मैं जा रहा हूं। बाद में फिर आऊंगा।"

और कोई दिन होता तो मलिना शोभन को यूं कभी नहीं जाने देती। इतनी देर तक शोभन को चाय पिलाए बिना छोड़ देना उसकी कल्पना के बाहर था। लेकिन आज खोयी-खोयी-सी निःशब्द खड़ी रही। शोभन ने एक बार मलिना की ओर देखा, फिर धीरे-धीरे बाहर चला आया।

स्त्री के चरित्र और विशेषकर मलिना के चरित्र के सम्बन्ध में इसी उम्र में शोभन ने बहुत-सा ज्ञान संचय किया था। इसलिए जल्दबाज़ी करने की चेष्टा नहीं की। उसने सोचा, जो उत्ताप जम गया है, वह जब

तक अपने-आप कम नहीं हो जाता, तब तक खामोश प्रतीक्षा करने के सिवाय और कोई चारा नहीं है। उसने वही रास्ता अपनाया। कई दिनों तक लगातार रोज़ आकर सिर्फ खोज-खबर ले जाता और कोई दूसरी बात नहीं उठाई। इधर मलिना के निर्देशानुसार सभा आदि पहले ही बन्द हो गई थी। रिहर्सल का कार्यक्रम भी अनिश्चित समय के लिए स्थगित हो गया था। भीतरी खबर न जानने पर भी शोभन ने अपनी बुद्धि के आधार पर इतना अनुमान लगा लिया था कि मलिना के स्वभाव-परिवर्तन की यह घटना चाहे जिस तरह भी घटी हो, लेकिन इसका असली कारण उनका दल ही है। कुछ एक लड़कों के हाव-भाव और उनकी गतिविधियां कुछ दिनों से इस समावेश और आवहवा के लिए उपयोगी सिद्ध हुए हैं, ऐसा नहीं लगता। इसके अलावा, उनकी संख्या में भी वृद्धि हुई थी। इसलिए पुरानी संस्था की पुन: स्थापना की चेष्टा न करके उसने एक नई योजना के बारे में सोचना शुरू कर दिया। सिर्फ आकार में नई नहीं, नीति और भाव-धारा में भी नई। लेकिन मलिना को क्या अपने बीच पाया जा सकेगा? पाया जा सकता है, यदि उसके धारण करने लायक कोई चीज़ बना दी जाए। साधारणत: स्त्रियों की दृष्टि स्थूल की ओर होती है। सोचने विचारने में उनका मन नहीं लगता। उन्हें कोई ऐसी चीज़ चाहिए जिसमें वे पूर्ण रूप से अपने को रमा सकें। मलिना के भी स्वभाव की यही विशेषता थी। अपने प्रारंभिक जीवन में शायद उसे इस कार्य की सुविधा थी लेकिन बाद वाले जीवन में नहीं। इस छोटे-से घर में एवं इससे बाहर जो उसका उच्चवर्गीय समाज है—इन दोनों में ही उसे ऐसा कुछ नहीं मिला था, जिसमें अपने दोनों उद्यमी हाथ एवं उन्मुक्त मन को तल्लीन रख सके। हर जगह उसे सिर्फ यही महसूस हुआ है कि यहां उसकी ज़रूरत नहीं है, करने के लिए कुछ नहीं है। मुझे बाद देने पर भी इनका काम अनायास ही चल जाता है। वह छटपटाकर अपने दिन काट रही थी। ऐसी ही एक मानसिक अवस्था के समय वह शोभन के दल में शामिल हुई थी। मन का वही रूप फिर दिखाई देगा, इस विषय में वह निश्चिन्त थी।

सिर्फ लड़कों की सभा, नाटक एवं उनसे सम्बन्धित कार्यक्रमों से ही नहीं बल्कि बाह्य जीवन के जिन सामान्य स्थानों में वह इतने दिनों तक

घूमती-फिरती रही थी, उन सवसे भी मलिना ने खुद को दूर हटा लिया। गृहस्थी अपनी उसी गति से चलती रही। हां, गृहिणी उसके घेरे से दूर हट गई। अब तक पति के साथ दिन-भर में जिन दो-एक आवश्यक वातों का आदान-प्रदान होता था, वह भी उस रात के बाद से प्रायः वन्द-सा हो गया। लड़की के साथ भी प्रायः यही सिलसिला था। यदि वह कुछ पूछने आती तो एक संक्षिप्त-सा उत्तर दे देती और खुद उसे बुलाने की कभी जरूरत महसूस नहीं करती। सिर्फ जिस दिन हिरन आता उस दिन उसके साथ कुछ वातें करती और उसके खाने-पीने की व्यवस्था थोड़ी-बहुत अपने हाथों से करती। उसके चले जाने पर फिर अपने निजी कमरे में जा घुसती।

सीमा भी जहां तक सम्भव था, मां से कम सम्बन्ध रखती, अधिकतर अपने कमरे में लिखती-पढ़ती रहती।

लड़के के साथ मलिना का जितना सरल और घना सान्निध्य था, लड़की के साथ उतना इससे पहले भी कभी नहीं हो सका था। सीमा का स्वभाव वहुत कुछ अपने वाप से मिलता-जुलता था—उम्र की तुलना में ज़रा ज़्यादा गंभीर, स्वल्पभाषी, अपनी सहमति और असहमति के सम्बन्ध में दृढ़ एवं वहुत ज़्यादा आत्म-केन्द्रित। मां की वहुत-सी वातें उसे प्रिय नहीं थीं। मां भी ज़िद्दी, घमंडी (उसके अनुसार) अहंकारी लड़की को मन ही मन पसन्द नहीं करती थी। इसके वावजूद दोनों के बीच स्नेह का जो स्वाभाविक सम्पर्क था, वह कभी कम नहीं हुआ था। लेकिन आज वहां भी जैसे एक घना काला वादल छा गया था। असल में शायद दोनों का यह अपराजेय अभिमान था। हालांकि अभिमान का यह काला वादल लघु हवा के स्पर्श से धीरे-धीरे उड़ाया जा सकता था, पर मां और लड़की दोनों में से किसी तरफ भी इस प्रयास के लक्षण दिखाई नहीं दे रहे थे।

आफिस से लौटने के पश्चात् पोशाक आदि उतारकर नहाने के वाद जव गुप्ता साहव दक्षिण की ओर के वरामदे में अपने नित्य निर्धारित काफी के प्याले को लेकर ईज़ी चेयर पर बैठ जाते, ठीक उसी समय सीमा भी कभी-कभी उनके पास आ बैठती। कभी-कभी हिमांशु भी उसे बुला लेते। दोनों ही वहुत कम वोलते थे। इसलिए ज़्यादा वातचीत भी नहीं होती थी; कभी-कभी इधर-उधर के सामान्य-से प्रश्नोत्तर होते थे। लेकिन वाप-वेटी

का यह नीरव सान्निध्य भीतर ही भीतर मुखर हो उठता।

उस रात के बाद बहुत दिनों तक सीमा [बाप के पास नहीं गई। हठात् याद आते ही तत्काल हिमांशु ने उसे बुला भेजा। अपने काम के अलावा अन्य सब बातों के प्रति वे प्राय: बेखबर ही रहते थे। यही उनका स्वभाव था। अपने सामने की वस्तु को देखते, तो बस देखते ही जाते; उसपर विशेष गौर नहीं करते। परन्तु लड़की की ओर देखकर वे मनही मन शंकित हो उठे। मन की शंका को बाहर से प्रकट न करके बोले, "शायद आजकल बहुत पढ़ रही हो ?"

"नहीं तो। पहले जितना पढ़ती थी, उससे तो बल्कि इधर कम कर दिया है।"

"तब इतनी दुबली क्यों हो गई हो ?"

"कहां," दाहिना हाथ घुमाकर दिखाते हुए बोली सीमा, "और कितनी मोटी होऊंगी।"

हिमांशु ने बात बढ़ाई नहीं। कुछ देर मौन रहने के पश्चात् लड़की की ओर देखकर बोले, "होस्टल में भर्ती होओगी ? मिसेज़ चटर्जी से पूछकर देखूं एक बार ?"

सीमा ने सिर झुकाकर दो मिनट तक कुछ सोचा, फिर बोली, "नहीं, रहने दीजिए।......और फिर अभी शायद सिंगल सीटेड रूम भी नहीं मिलेगा।"

"तुम्हारी क्लास की लड़कियां नहीं आतीं आजकल ?"

"कभी-कभी आती हैं।"

"तुम उनके घर क्यों नहीं चली जातीं ?"

"मुझे अच्छा नहीं लगता।"

मोटे तौर पर सीमा को रूपसी नहीं कहा जा सकता था। लेकिन सभी लड़कियों की एक ऐसी उम्र होती है जब रूप के अभाव की पूर्ति करके लावण्य फूटता है। एक ऐसी सर्वांगीण सम्पत्ति उसकी देह में आश्रय लेती है जिससे विभिन्न अंगों के दोष दिखाई नहीं पड़ते। यह महसूस नहीं होता कि नाक घमण्डी की तरह ऊंची है और दोनों आंखें या तो बहुत छोटी हैं

या बहुत बड़ी। यह अवस्था पार होने से पहले ही लड़की की शादी कर दे—यही थी मलिना की आंतरिक इच्छा; और सीमा के ज़रा बड़ी होते ही यह बात उसने पति को भी याद दिला दी थी। हिमांशु ने मुंह पर कोई प्रतिवाद नहीं किया, लेकिन इस प्रस्ताव से उनके मन को चोट नहीं पहुंची, यह उनके चेहरे के भाव से अस्पष्ट नहीं रहा। सीमा मैट्रिकुलेशन पास कर ले, उसके बाद एक तरफ वह कालेज में पढ़ती रहेगी और दूसरी तरफ धीरे-धीरे एक मनपसंद लड़के की खोज करते रहेंगे—यही बात उन्होंने सोच रखी थी। वे दुःखी होंगे, यह जानकर या अन्य किसी कारण से मलिना ने इस सम्बन्ध में ज़्यादा ज़ोर नहीं दिया था।

आज लड़की की तरफ देखकर हिमांशु ने खुद ही स्थिर कर लिया कि परीक्षा के बाद जितनी जल्दी हो सकेगा, उसकी शादी कर देंगे। उसकी शादी योग्य वयस हो चली थी, यह सोचकर नहीं, बल्कि इस घुटन भरी आवहवा से उसके नाज़ुक मन को बचाने के लिए। यहां वह थक गई है और सरलता से निःश्वास लेने के लिए उसे एक अन्य स्थायी आश्रय की ज़रूरत है, यह वे निःसन्देह समझ गए थे।

यह सोचते समय कि इस विषय में किसकी सहायता ली जाए, हठात् इन्हें धुर्जटि की बात याद आई। हिरन के दोस्तों में वे इसी लड़के को सबसे ज़्यादा चाहते थे। यही नहीं, बल्कि उसपर एक प्रच्छन्न स्नेह का भाव भी रखते थे। इसके अलावा, उनके बीच एक दूर के सम्पर्क की रिश्तेदारी भी थी। एक और कारण से वे उसे बीच में रखने की ज़रूरत नहीं समझते थे। वे जानते थे कि उनके दल में न रहने पर भी धुर्जटि को मलिना अच्छी दृष्टि से ही देखती है और उसके हाथों में दो-एक ऐसे दायित्वपूर्ण भार दिए जा सकते हैं, जो शोभन इत्यादि द्वारा नहीं हो सकते। यदि सीमा की शादी के सम्बन्ध में वह साथ रहे तो मलिना की ओर से भी कितने ही अनावश्यक विरोधों से बचा जा सकेगा। इस विषय में हिमांशु ने सचमुच समझदारी का परिचय दिया था। बल्कि सम्बन्ध धुर्जटि ने ही कराया था, यह कहना अनुचित नहीं होगा। दूल्हा उसका परिचित था। इसलिए मलिना ने भी आपत्ति नहीं की, बल्कि शुरू में जो निर्लिप्त भाव दिखाई दिया था, अन्त में वह भी नहीं रहा। धुर्जटि इस तरह से

अग्रसर हुआ था, जैसे वही साग्रह प्रस्ताव लेकर आया है, ग्रौर चाची की स्वीकृति मिलने पर ही ग्रन्य सम्बन्धित बातों के विषय में चाची जी के साथ विचार-विमर्श किया जा सकता है।

सीमा की शादी हो गई। तब तक उसका परीक्षाफल नहीं निकला था। हिमांशु के मन ने पहले तो स्वीकृति नहीं दी। कारण लड़के ने इंडियन आडिट ऐण्ड एकाउंटस सर्विस की परीक्षा पास कर ली थी और ग्रब उसे नौकरी गुजरात में मिली थी। लड़की बहुत दूर चली जाएगी। उनके क्षणिक एकान्त की एकमात्र संगिनी वही थी। पिता का मन वह समझती थी—जबकि मुंह खोलकर उसने कभी कुछ नहीं कहा। लेकिन उसका यह सम्बन्ध-विच्छेद कितना भी कष्टप्रद क्यों न हो, गुप्ता साहब उसे हृदय के एक कोने में रखकर दृढ़ता से ग्रागे बढ़ गए थे। उन्होंने ग्रपने मन को समझाया—खुद की बात सोचने से नहीं चलेगा, पहले लड़की की ग्रोर देखना पड़ेगा। उसके लिए यह दूर-यात्रा ही शुभ-यात्रा है। यदि यह बात नहीं होती तो इतनी-सी उम्र में उसकी शादी कर देने की क्या ज़रूरत थी!

लड़की की शादी का धक्का मिटते न मिटते ही लड़का दूर विदेश चला गया। मलिना के दिन फिर भारी हो उठे, इतने कि धक्का देने पर भी धकेले नहीं जा सकते थे। उसी सुयोग में शोभन ने एक दिन अपने शुभानन्द निलय की नई परिकल्पना की बात छेड़ दी। ग्रतनु एवं कुछ अन्य नये चेहरों ने भी साथ दिया। सीमा की उम्र की दो-एक लड़कियां भी आईं, लेकिन सीमा से एकदम भिन्न, सहज, खुली और तितली की तरह चंचल। ग्रकारण हंसतीं, बेकार में डरतीं, बिना कारण कौतूहलवश ग्रद्‌भुत प्रश्न करतीं। तर्क नहीं करतीं, चरित्र की बुरी नहीं थीं। मलिना जो कुछ कहती है, वे सिर झुकाकर स्वीकार लेतीं। ऐसी लड़कियां मलिना को पहले कभी नहीं मिली थीं, ग्रौर वह मन ही मन शायद ऐसी ही लड़की चाहती थी। इन्हें देखकर उसे महसूस हुआ कि उसके जीवन में इनका बहुत ग्रभाव था—एक ऐसा ग्रभाव जिसे उसकी अपनी लड़की भी इतने दिनों में पूरा नहीं कर सकी थी। ये कितनी ग्राज़ाद हैं, कितनी सरल प्रकृति

की हैं एवं कितनी आज्ञाकारी हैं।

अनजाने में फिर एक नये लड़के-लड़कियों के दल में जुट गई मलिना। एक भिन्न जगत में। योद्धाओं की रणभूमि में नहीं, शिल्पी के सभा-स्थान में। उन लोगों के तर्क-वितर्क, आलोचना-प्रत्यालोचना और बुद्धि की लड़ाई में एक ऐसी उत्तेजना थी, एक ऐसा मादक रस था, जिसमें डूबकर मग्न रहा जा सकता था। यदि 'शुभानन्द निलय' मात्र एक साधारण नाच-गाने का प्रतिष्ठान होता तो मलिना को शायद उसमें इतनी दिलचस्पी नहीं रहती। लेकिन उनके भीतर के इस ग्राम्य-स्पर्श ने—ग्राम्यजीवन की स्वतः स्फूर्त रस-धारा को शहर तक पहुंचाने के आयोजन ने—उसके अन्तर को विशेष गहराई से स्पर्श किया। उसने सिर्फ आग्रह से नहीं बल्कि यथासाध्य शक्ति और उत्साह से इनका साथ दिया।

५

वर्षा-मुक्त श्रावण-संध्या का ग्रन्धकार ग्रभी छाया नहीं था कि उससे पहले ही कलकत्ते की सड़कों पर गैस की बत्तियां जलनी शुरू हो गईं। बत्तियां जलाने वाले ग्रपने कन्धे पर काठ की छोटी सीढ़ी रखे एक पोस्ट से दूसरे पोस्ट तक दौड़ रहे थे। ग्राजकल की विद्युत् की जगह उन दिनों सड़कों पर गैस की बत्तियां जलती थीं। यह सच है कि ग्राज की तरह किसी अदृश्य जादू-छड़ी के स्पर्श-मात्र से एक साथ जल उठने की चमक से मन मोहित नहीं हो सकता था। लेकिन इस मृदु हाथ के स्पर्श से एक-एक करके बत्तियों के जलने में चाहे चमक न हो, कैसा तो एक अद्भुत काव्य-रस था। ग्रनायास ही कल्पना की जाए तो ऐसा लगता है जैसे ये लैम्प कहानी की अनेक रानियां हैं। या फिर और भी नजदीकी दृष्टान्त दिया जा सकता है—इन रोशनियों में फूल खिलने का ग्राभास मिलता है। वृक्ष के सभी फूल एक साथ एक क्षण में तो खिल नहीं जाते, एक-एक करके खिलते हैं। इसीमें उनका सौन्दर्य है। क्या गति ही सब कुछ है।

जो लोग रास्ते में चल रहे हैं, उनमें से ज़्यादातर काम-काजी आदमी हैं, जो इन सब विषयों के बारे में नहीं सोचते। कब बत्तियां जलीं, कैसे जलीं, इसे लेकर वे ग्रपना समय बरबाद नहीं करते। ज़्यादा देर तक बत्तियां नहीं जलने पर किसी-किसीकी नज़र इस ग्रोर पड़ती है। तब वे मन ही मन गैस कम्पनी को भला-बुरा कहते। कोई-कोई ग्रपने मित्र को सुनाकर कहता, "नहीं, देखता हूं यह चीज बहुत ग्रागे बढ़ गई है, अखबार में एक चिट्ठी भेजनी पड़ेगी।"

कनिका को छुट्टी मिलने में ग्राज भी कुछ देर हो गई थी। दिन-भर साहब बहुत व्यस्त थे। खाली बैठे-बैठे उसके हाथ-पैर ग्रकड़ने लगे थे, तब शाम को उसे बुलाया गया। लेकिन ज़्यादा देर अटकाकर नहीं रखा। भला

आदमी उसे बहुत ही दुःखी प्रतीत हो रहा था। इसका आभास उसे मिल चुका था कि उनका पारिवारिक जीवन सुखी नहीं है। ड्राइवर-चपरासियों की बातचीत से (उनका साथ न देने पर भी) इस तरह की दो-एक बातें उसके कानों में पड़ी थीं जिससे वह समझ गई थी कि पत्नी के साथ उनका सम्पर्क बहुत ही क्षीण है और जितना कुछ है वह भी कड़वाहट लिए हुए है। यह सुनकर बहुत दुःख हुआ था उसे। इतना बड़ा और इतना भला आदमी। मनुष्य जो चाहता है, जिसके मिल जाने पर वह अपने-आपको भाग्यवान समझता है—सब कुछ उनके पास है। पत्नी, लड़का, लड़की, मकान, गाड़ी, ख्याति, दौलत, स्वास्थ्य—किसीकी कमी नहीं है। फिर भी कितना दुःख-मय निःसंग जीवन है। उसे याद आया कि शरत्चन्द्र की किसी किताब में उसने पढ़ा था—"दुःखी नामक कोई अलग जाति नहीं है।" गुप्ता साहब को देखते ही वह समझने लगी कि इस बात में कितनी सार्थकता है।

इन्हीं सब विषयों के बारे में सोचती हुई वह बेखबर रास्ते में चली जा रही थी। ट्राम पकड़ने की जल्दी भी थी। हठात् उसे लगा कि बाईं ओर से कोई आदमी उसके नज़दीक आ रहा है। कनिका के चेहरे पर परेशानी के भाव उभर आए। दाहिनी ओर हटते समय हठात् उसके चेहरे की ओर नज़र पड़ते ही हंस पड़ी, "ओह मां, तुम ? मैंने तो सोचा···"

"पुलिस को बुलाऊं या नहीं···" वाक्य पूरा करते हुए बोला ज्योतिर्मय।

"पुलिस का क्या होगा ?" भीड़ से अलग हटती हुई बोली कनिका, "मेरे हाथों में ताकत नहीं है क्या ? निर्बल औरत समझ रखा है मुझे ?"

और कनिका ने हाथ मुट्ठी बांधकर दिखाए।

ज्योतिर्मय ने तत्काल कोई जवाब नहीं दिया। सिर से पांव तक उसके सुगठित अंगों को मुग्ध दृष्टि से देखकर मृदु-मृदु हंसने लगा।

"क्या देख रहे हो ?" लज्जालु स्वर में बोली कनिका।

"देख रहा हूं, तुम ठीक ही कह रही हो। पहले से बहुत ताकतवर हो गई हो, और (कनिका के मुग्ध चेहरे पर साग्रह प्रतीक्षा के चिह्न थे) और, बहुत अधिक सुन्दर भी।" फुसफुसाहट के स्वर में नज़दीक खिसकते हुए बोला ज्योतिर्मय।

"जाओ।" कहकर दूर हट गई कनिका। उसकी दोनों आंखों से खुशी का प्रवाह उमड़ा पड़ रहा था।

ज्योतिर्मय बोला, "कवि होता तो कहता, वर्षा की भरी नदी, आते समय रास्ते में जो देखकर आया हूं।"

"कब आए, यह तो बताया ही नहीं। सिर्फ बेकार की बातें किए जा रहे हो।"

"आज ही आया हूं।"

"चलो, घर चलें।"

"वहीं से तो आ रहा हूं।"

"सच। फिर थोड़ी देर और क्यों नहीं बैठे?"

"भरोसा नहीं था। कौन जाने कितनी देर बैठना पड़ता? सुना है, कभी-कभी तुम्हें लौटने में बहुत देर हो जाती है। किसी-किसी दिन तो···"

दोनों ने पास-पास चलना शुरू कर दिया। कहते-कहते रुक गया ज्योतिर्मय और मुस्कराते हुए कनिका के चेहरे की ओर देखने लगा। कनिका ने आंखें उठाकर प्रश्न किया, "किसी-किसी दिन क्या?"

"जनरल मैनेजर खुद गाड़ी में पहुंचा जाते हैं।"

"किसने कहा?"

'सुना है।"

"सुनते ही हृदय में खलबली मच गई न?"

"खलबली मचने से भी क्या कर सकता हूं? कहां डिक्सन कम्पनी का जनरल मैनेजर और कहां रेल कम्पनी का लोअर डिवीज़न क्लर्क। अच्छा, भले आदमी की उम्र क्या है?"

"और कितनी? यही पच्चीस-छब्बीस के आसपास होगी।" आंचल में मुंह दबाकर हंसी कनिका।

"क्या कहती हो? इतनी छोटी उम्र में जी० एम० हो गए। तब तो देखने में भी अवश्य सुन्दर होंगे।"

"ब-हु-त सुन्दर।" 'बहुत' शब्द पर ज़ोर देकर अपनी बड़ी-बड़ी आंखें ज्योति के चेहरे की ओर उठाते हुए खिलखिलाकर हंस पड़ी कनिका। फिर

हंसी रोककर बोली, "अच्छा, बताओ तो, इतनी डाह क्यों करते हो ?"

"यह बताया जाता है क्या ? कमल-पत्ते के जल की तरह नारी-हृदय बहुत चंचल होता है।"

"कविता-उविता लिख रहे हो क्या आजकल ?"

"चेष्टा कर रहा हूं जब स्त्री नहीं मिली तो कविता ही सही। लेकिन, क्या पानी की प्यास छाछ से मिटाई जा सकती है ?"

"इसका मतलब और देरी सहन नहीं हो रही है, क्यों ठीक है ना ?' —कहकर, ज्योतिर्मय के बायें हाथ को मृदुता से दबा दिया। फिर कनिका के हृदय से एक गंभीर निःश्वास निकल गई। चेहरा उदास हो उठा। ज्योति उसका हाथ पकड़ते हुए बोला, "चलो, कहीं थोड़ी देर बैठें। तुमसे बहुत-सी बातें करनी हैं।"

बहुत-सी बातें नहीं, एक ही। दोनों मिलकर कब, किस तरह घर बसाएंगे—इसीकी कल्पना और चर्चा। उनका परिचय बहुत पुराना था, कुछ वर्षों से मन देने-लेने की बारी भी खत्म हो गई थी। एक दानापुर में रहता था और दूसरी कलकत्ते में रहती थी। फिर भी ज्योति चाहता था कि शादी हो जाए लेकिन कनिका का दिल गवाही नहीं दे रहा था। यदि एक साथ न रह सके, तो उस मिलन में सुख कहां है ? उसे एकमात्र यही आशा थी कि बड़ी बहिन मनिका का एक देवर बड़ा हो गया था। लड़के में जान थी। उसने आश्वासन दिया था कि किसी भी तरह का प्रबन्ध होते ही वह भाभी और उनके बच्चों का भार अपने ऊपर ले लेगा। रह गई एक दादी। वे काशी जाने के लिए उतावली हैं। उतने-से रुपये ज्योतिर्मय सहज ही दे सकेगा। तब कनिका नौकरी छोड़ देगी। दानापुर जाकर रेलवे-क्वार्टर्स में अपना घर बसाएगी। कलकत्ता उसे अच्छा नहीं लगता। यह स्टेनो की नौकरी भी उसे पसन्द नहीं थी। एक पुरुष के एकान्त सान्निध्य में उसे काम करना पड़ता था। आज जिसके यहां काम कर रही है, उसकी बात और है। वह देवतुल्य व्यक्ति है। उसकी ओर देखने से सिर श्रद्धापूर्वक झुक जाता है। लेकिन हमेशा इसी तरह का मालिक मिलेगा—इसकी निश्चितता कहां है। गुप्ता साहब और ज़्यादा दिनों तक इस पोस्ट पर

नहीं रहेंगे। डाइरेक्टर बोर्ड में चले जाएंगे। तब उनकी जगह कैसा व्यक्ति आएगा, कौन जानता है। यदि डेप्युटी जनरल मैनेजर आ गया तो उसके साथ अपनी इज़्ज़त कायम रखते हुए कार्य करना कनिका के लिए कठिन था। एक-आध बार डिक्टेशन लेने उसके कमरे में जाना पड़ा था। उसकी दृष्टि अच्छी नहीं है। बिना काम के भी यों ही बहुत देर तक बैठाए रखता है। इतनी बड़ी टेबिल के उलटी ओर से चिट्ठी पर हस्ताक्षर नहीं कराए जा सकते, पास खड़ी होकर झुककर कराने पड़ते हैं। चिट्ठी पढ़ने में व्यर्थ ही ज़्यादा समय लेते हैं और बीच-बीच में चेहरे की ओर देखकर मृदु-मृदु हंसते हैं। जबकि बोलने के लिए कुछ भी नहीं है फिर भी शरीर हिलता रहता है। इस आफिस में नौकरी मिलने से पहले कनिका को कुछ दिनों तक दूसरी जगह काम करना पड़ा था। वहां का अनुभव तो और भी खराब था। मालिक पंजाबी था। प्रायः यही बोलता—'आफिस में बहुत भीड़ रहती है, इसलिए काम ठीक से नहीं हो पाता। सुबह मेरे फ्लैट की तरफ आइए न ?' दो-तीन दिन बहाना बनाने के पश्चात् एक दिन जाने के लिए बाध्य हो गई थी कनिका। जानती नहीं थी कि वह अकेला रहता है। उस समय नौकर भी नहीं था। बैठने के कमरे का पर्दा हटाकर झांकते ही 'आइए, आइए' कहकर चहक उठा था वह। उसकी दोनों आंखें लाल थीं, हाथ में गिलास था, और बातें अस्पष्ट थीं। कनिका ठहरी नहीं। उसी समय नीचे उतर आई थी और दूसरे दिन ही त्याग-पत्र भेज दिया था।

कनिका ने अपने मन में यही सोच रक्खा था कि शादी के बाद नौकरी नहीं करेगी। बहुत ज़रूरत होने पर दानापुर या उसके आसपास लड़कियों के किसी स्कूल में मास्टरी करेगी। असल में उसकी कामना एकान्त मन की थी, नौकरी की नहीं। अपने मन-प्राण लगाकर एक सुन्दर-सा घर बसाएगी। जो बात सोचकर वह इन्तज़ार कर रही थी उसका एक कारण यह भी था कि तब तक ज्योतिर्मय की आय थोड़ी और अच्छी हो जाएगी।

चलते-चलते वे कर्ज़न पार्क के नज़दीक पहुंच गए थे। उन दिनों भी उस पार्क में लाल सुर्खी और छोटे-छोटे पत्थरों का रास्ता बना हुआ था जिसके किनारे-किनारे रेलिंग से घेरे हुए घास एवं मौसमी फूलों की कतारें थीं, जो शाम के समय घूमने वाले अतिथियों का मन बहलाती थीं। पार्क

ने चारों ओर ट्राम रूपी लाइन के ग्राभूषण पहन रक्खे थे। कनिका का हाथ पकड़े हुए एक एकान्त कोना छांटकर बेंच पर बैठते हुए बोला ज्योतिर्मय, "सबसे पहले एक खुशखबरी सुना रहा हूं। लेकिन मिठाई खिलानी पड़ेगी।" कहकर एक विशेष दृष्टि से उसने कनिका की ग्रांखों की ग्रोर देखा। कनिका का मुंह हठात् लाल हो उठा। आंखें झुकाकर मृदु स्वर में बोली, "पहले खुशखबरी तो सुनाओ।"

"कुछ दिन हुए मुझे एक सेक्शनल इन्चार्ज की जगह प्रोमोशन मिला है।"

"सच ?" कनिका का चेहरा चमक उठा।

"दूसरी खुशखबरी है कि कलकत्ते में बदली की सम्भावना दिखाई दे रही है।"

"नहीं।" वह अप्रसन्न हो गई और उसके माथे पर सलवटें पड़ गईं।

"क्या नहीं ?" ज्योतिर्मय के स्वर में विस्मय का आभास था।

"कलकत्ता मुझे अच्छा नहीं लगता।"

"यह क्या ? कलकत्ता न आने से हम लोग एक साथ कैसे रहेंगे ?"

"क्यों, क्या मैं दानापुर नहीं जा सकती ? शादी के बाद वर वधू के पास आता है या वधू वर के घर जाती है ?"

ज्योतिर्मय उदास हो गया। सामने की ओर देखते हुए शुष्क स्वर में बोला, "इसकी तो निकट भविष्य में कोई सम्भावना दिखाई नहीं देती। दादी से जो सुना···"

"क्या सुना दादी से ?" आग्रह के स्वर में पूछा कनिका ने।

"जब तक मनिका दीदी की सुव्यवस्था नहीं हो जाती, तब तक वे तुम्हें कैसे छोड़ेंगी। ग्रौर इसमें अभी बहुत देरी है।"

"बहुत नहीं, थोड़ी-सी देरी है। और तब तक हमें प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगी।"

"मेरी यदि यहां बदली हो जाती है, तो फिर इसकी क्या ज़रूरत है···।"

"छिः यह कैसे हो सकता है।"

"क्यों नहीं ?"

"यह तुम नहीं समझोगे। जब इतने दिन बीत गए तो और कुछ दिनों

तक इन्तज़ार नहीं कर सकते ?"

जब एक युवक-युवती का जोड़ा निश्चिन्त हो वृक्ष की ओट में बैठा भविष्य के आश्रय की चिरन्तन समस्या में मग्न था, उस समय उनके वर्तमान क्षणिक आश्रय से भी उन्हें वंचित करने के लिए श्रावणी आकाश में जो षड्यन्त्र चल रहा था, उससे वे बिलकुल अनभिज्ञ थे। जब उन्हें इसका पता चला तब आत्मरक्षा का समय नहीं बचा था। बरसात की बौछार जब आती है तो बहुत तेज़ी से घड़घड़ाहट करती हुई आती है और उसे मूसलाधार होते एक क्षण भी नहीं लगता। असतर्क पथचारी अपने बचाव के लिए कुछ खोज पाने से पहले ही सिर से पांव तक भीग जाते हैं। ज्योति और कनिका की भी वही दशा हुई। पार्क के आस-पास जो दो-एक छोटे-छोटे शेड थे, वे सब लोगों से भरे हुए थे। ज्योतिर्मय किसी तरह उसमें घुस सकता था लेकिन कनिका के लिए यह बिलकुल भी सम्भव नहीं था, और विशेषकर वर्तमान अवस्था में, जब कि उद्यमी जलधारा के निर्मम आक्रमण से उसके शरीर के कपड़े पराजित थे।

वर्षा का वेग और भी बढ़ गया। हवा के कारण तिरछी बौछारें सुई की तरह शरीर में चुभ रही थीं। खुली जगह खड़े रहना भी सम्भव नहीं था। एक तरह से ज़बर्दस्ती करके ज्योति उसे लेकर दौड़ते-दौड़ते चौरंगी के एक ढके हुए फुटपाथ पर जा खड़ा हुआ। वहां वर्षा की बूंदें तो नहीं आती थीं लेकिन उससे भी तीव्र चारों ओर की लालसा-भरी आंखें थीं। यह स्थिति असह्य हो उठी। कनिका की घबराहट ज्योतिर्मय की आंखों से छिपी हुई नहीं थी। मौका मिलते ही उसके कान के पास मुंह ले जाकर फुसफुसाहट के स्वर में बोला, "रास्ते में और खासकर ऐसे समय में यह सब देखने से नहीं चलता। फिर ये सब जाने-पहचाने लोग तो हैं नहीं।"

"जाने-पहचाने न हों···" झुंझलाकर बोली कनिका, "यहां और कितनी देर खड़े रहोगे ? चलो, एक रिक्शा करके चलें।"

इतनी देर में ट्राम भी बन्द हो गई थी। धर्मतल्ले में घुटने तक पानी भर गया था ! आने-जाने के अन्य साधन भी प्रायः बन्द थे। शायद इस बात को प्रमाणित करने के लिए कि मनुष्य सब यन्त्रों से बड़ा है, सिर्फ कुछ रिक्शे वाले रह गए थे। पूरा धर्मतल्ला पैदल पार करने के बाद मौलाली

के मोड़ पर एक रिक्शा मिला। तिगुना भाड़ा देकर जब काफी रात गए बेनियापुकुर अपने घर में पहुंचे, तब कनिका के कंपकंपी छूट रही थी।

दादी ने ज्योति से रात में वहीं रह जाने का अनुरोध किया, पर वह राज़ी नहीं हुआ। घर की खींचातानी के अलावा एक और कारण भी था। कनिका का इतनी देर तक और इतना घना सान्निध्य उसे इससे पहले कभी नहीं मिला था। इतनी देर तक पानी में भीगने के कारण रास्ते में वह उसे दयनीय और असहाय लग रही थी। रिक्शे मैं बैठकर उसने ज्योति के कन्धे पर सिर रख दिया था। गुंजरित वर्षा के निर्जन अन्धकार में कनिका के क्लान्त, कोमल और गीले शरीर के स्पर्श मात्र से ज्योतिर्मय की समस्त चेतना में जिस नशे का संचार हो गया था, रोशनी में लोगों के बीच पहुंचते ही वह टूट गया; इसलिए वहां ज्योति देर तक न रुककर उसी रिक्शे में अपने घर लौट गया था और रास्ते-भर उसी अनुभूति की स्मृति का स्वाद थोड़ा-थोड़ा करके उपभोग करता गया था।

दूसरे दिन बुखार की स्थिति में कनिका की नींद खुली। पूरे दिन शरीर में दर्द था और माथा जैसे फट जाना चाहता था। दादी व्याकुल हो उठी। कनिका उस घर की मात्र एक लड़की नहीं थी, कि दो-चार दिन कष्ट भोगकर अपने-आप ठीक हो जाती। उस घर की आजीविका का वही तो एकमात्र सहारा थी।

एक दिन की जगह अगर दो दिन भी बुखार रह गया तो सारे घर में अन्धकार छा जाएगा। उसीके कन्धों पर तो इतने लोगों की जीविका चलाने का बोझ था। कनिका मना करती रही लेकिन उन्होंने नहीं सुना और मनिका के लड़के को भेजकर डाक्टर बुला लिया। परिचित प्रवीण चिकित्सक मोहल्ले में ही रहते थे। बुलाते ही आ गए। इस घर के प्राणियों का वे बराबर आधी फीस में इलाज करते थे।

परीक्षा आदि खतम करके और रोगी को दिलासा देने पर भी बाहर आकर दादी से बोले, "लगता है, बुखार सहज नहीं टूटेगा, दो-चार दिन भोगना पड़ेगा। लगता है न्यूमोनिया के लक्षण हैं।"

"क्या बोल रहे हैं ?" वृद्धा चौंक पड़ी।

"नहीं, नहीं, घबराने की कोई बात नहीं है।"

शाम के समय ज्योतिर्मय आया। उसे भी ज़ोर का ज़ुकाम लगा था। लेकिन रुकने का कोई उपाय नहीं था। अभी-अभी प्रोमोशन मिला था ग्रौर इसके अलावा उसका बॉस भी ज़रा टेढ़े स्वभाव का था। इसलिए वह रात की गाड़ी से ही चला गया। जाते समय दादी से बार-बार बोल गया था कि कना के स्वास्थ्य के बारे में उसे कम से कम दो दिन के अन्तर से अवश्य खबर भेजी जाए। ज्योतिर्मय की एक बार कनिका से एकान्त में मिलने की इच्छा थी। ऐसा लगा जैसे रोगी की मलिन आंखों से भी वही भाषा फूट रही है लेकिन इसका ग्रवसर नहीं मिल सका।

स्वस्थ होकर काम पर लौटते-लौटते कनिका को प्रायः तीन सप्ताह लग गए। छुट्टी की दरख्वास्त पहले ही भेज दी गई थी। अब ठीक होकर बड़े बाबू के पास हाज़िरी देने पहुंची तो वे आंखें उठाकर बोले, "आ गई ? ग्रोह, बहुत दुर्बल हो गई हो। देखो न, मुझे तो इतनी फुर्सत ही नहीं मिली कि जाकर दो-एक बार देख ग्राता। और फिर बड़े साहब भी नहीं हैं।"

कनिका चकित हो गई, "कहां गए वे ?"

"क्यों, तुम नहीं जानतीं ? ओह, तुम तो थीं ही नहीं, जानोगी कैसे ? वे बहुत बीमार हैं। टाइफाइड है। ग्राज प्रायः सत्रह-अठारह दिन हो गए।"

कनिका के चेहरे पर गहरी उदासी घिर आई। शुष्क स्वर में बोली, "उनकी जगह कौन काम कर रहा है ? शायद डी० जी० एम० ?"

"उन्हें छोड़ और कौन करेगा ? मिलकर नहीं ग्राई ? जाओ, जाओ, जल्दी से जाग्रो। रोज़ एक बार तुम्हारी खोज करते हैं।"

डेप्युटी (वर्तमान में एक्टिंग) जनरल मैनेजर से मिलते ही उन्होंने उसका स्वागत किया, "आइए, आइए।" फिर बोले, "कहिए, कैसी हैं ?"

कनिका ने सिर झुकाकर कहा, "अच्छी हूं।"

"ग्रापके साथ-साथ मिस्टर गुप्ता भी बीमार पड़ गए। वेरी स्ट्रेन्ज कोइन्सिडेन्स, है न ?" कहकर हो-हो करके हंस पड़े। हठात् रुककर गंभीर स्वर में बोले, "खैर, ग्रब ग्राप जाइए। मैं इस हाथ के काम को खतम

करके पांच मिनट बाद आपको बुलाता हूं ।"

वे काम जितना करते, बातें उससे बहुत अधिक करते थे । वे भी बेकार की । कनिका एक दिन में ही परेशान हो उठी । बार-बार मन ही मन सोचती, इसकी तुलना में वह मनुष्य कितना बड़ा है—विद्या, बुद्धि, व्यवहार, कार्य-क्षमता हर चीज़ में । इसके साथ वह कैसे काम करेगी ? इन्हीं सबके बारे में सोचते-सोचते वह शाम को छुट्टी होने पर सीढ़ियों की ओर जा रही थी कि देखा, हेडक्लर्क भी उसी ओर आ रहे थे । बोले, "नया बॉस कैसा लगा ?"

"अच्छा ही, आज आप बहुत जल्दी घर जा रहे हैं ?"

"घर नहीं जा रहा । साहब को देखने जा रहा हूं । अभी लौट आऊंगा । फिर क्या मालूम कितनी देर बैठना पड़े । तुम चलोगी क्या ? हमारी स्टेशन वैगन खड़ी है ।"

"मैं ?" कहकर उत्सुक दृष्टि से बड़े बाबू की ओर देखा जैसे उनके आदेश की अपेक्षा हो ।

"क्या बुराई है ? आफिस के और भी चार-पांच लोग जा रहे हैं । तुम जाओगी तो शायद कुछ काम भी हो जाएगा । चारों ओर ज़रा ठीक-ठाक करके आ सकोगी । हम लोग तो यह सब कर नहीं सकते । जैसा कि बड़े लोगों के यहां होता है—चिकित्सा तो चल ही रही है, लेकिन उनकी देख-भाल करने वाला कोई नहीं है । पत्नी तो यहां है नहीं; दिल्ली या लाहौर कहीं फंक्शन में गई है ।"

अन्तिम वाक्य बोलने से पहले चारों ओर देखकर धीमे स्वर में बोले थे बड़े बाबू । 'फंक्शन' शब्द पर भी बड़ा ज़ोर दिया था । फिर एक लम्बी सांस खींचकर एकदम भिन्न स्वर में बोले, "उन्हें देखकर बहुत कष्ट होता है । इतने बड़े आदमी हैं, फिर भी कोई ऐसा नहीं है जो उनके मुंह में दो बूंद पानी दे सके । इच्छा हो तो चलो न ।"

कनिका खुद भी अभी पूर्ण रूप से स्वस्थ नहीं हुई थी । उसे विश्राम की ज़रूरत थी । लेकिन इस समय यह बात ध्यान में नहीं आई । उचित-अनुचित के बारे में भी नहीं सोचा । एक आन्तरिक प्रेरणा उसे बड़े बाबू के पीछे-पीछे गाड़ी तक ले आई ।

खुले दरवाजे से भीतर प्रवेश करते ही कनिका सिहर उठी—यह रोगी का घर है या सियालदह स्टेशन का थर्ड क्लास वेटिंग रूम ? फर्श पर झाड़ू तक नहीं दी गई थी। कागज़ के ठोंगे, वर्फ, फलों के छिलके, पानी का जग, फीडिंग कप, कांच का गिलास और भी कितनी ही चीज़ें इधर-उधर बिखरी पड़ी थीं। बिछौने की चद्दर मैली हो गई थी और चारों ओर से सिकुड़ गई थी। तकिये की खोली शायद एक सप्ताह से नहीं बदली गई थी, डिक्सन कम्पनी के जनरल मैनेजर हिमांशु गुप्ता ढेर सारी उदासी एवं विशृंखलता के बीच असहाय-अवलम्बनहीन अनाथ की तरह आंखें बन्द किए पड़े थे। वही स्थिर, निश्चल गंभीर चेहरा—जिसकी ओर आंखें उठाकर देखा तक नहीं जाता था—सूखकर शीर्ण हो गया था। उसपर नुकीली दाढ़ी बढ़ गई थी, सिरहाने बैठी एक नर्स सिर पर आइस बैग रक्खे हुए थी। उसके चेहरे पर परेशानी और अतिव्यस्तता की सिकुड़न इतनी स्पष्ट थी कि कनिका ने घर में घुसते ही लक्ष्य कर लिया था। दो मिनट में दो बार बायां हाथ ऊपर करके घड़ी देख लेती। घर में बहुत-से लोग थे—कोई खड़ा था, कोई बैठा था, कोई इधर-उधर आ-जा रहा था। कनिका देखते ही समझ गई कि ये सब देखने के लिए आए हैं। विज़िटर हैं। रोगी के साथ इनका इतना ही सम्पर्क है।

कनिका एक ओर खड़ी-खड़ी सोच रही थी कि क्या करे, इसी बीच बाहर से लोगों की आवाज़ सुनाई दी। ठीक उसी समय डाक्टर कमरे में घुसा। उसके पीछे धुर्जटि था एवं हाथ में बैग लिए हुए निशिकान्त। डाक्टर किसी ओर देखे बिना सीधा रोगी के पास रखी हुई कुर्सी पर जाकर बैठ गया और साथ-साथ परीक्षण शुरू कर दिया। नर्स से दो-एक प्रश्न किए लेकिन उत्तर सुनकर खुश नहीं हुआ यह उसके चेहरे से साफ ज़ाहिर था। उठकर धुर्जटि को एक कोने में ले जाकर बोला, "देखो, रोगी की सेवा-शुश्रूषा जैसी होनी चाहिए, वैसी नहीं हो रही है। जानते तो हो, टाइफाइड का और कोई ट्रीटमेण्ट नहीं है। अच्छा-बुरा सब कुछ नर्सिंग और देखभाल पर निर्भर करता है। यह नर्स किसी काम की नहीं है। रात में भी क्या यहीं रहती है ?"

"जी नहीं, दूसरी रहती है। उसके भी आने का समय हो गया है।"

"आ जाती तो अच्छा रहता। क्या-क्या करना होगा, बता जाता। पूरे दिन में एक बार भी स्पन्ज नहीं किया गया इसलिए अभी स्पन्ज करना आवश्यक है और एनिमा भी···"

"ठहरिए, मैं लिख लेता हूं।" कहकर धुर्जटि ने पाकेट से एक नोट-बुक निकाली।

"तुम लिखकर क्या करोगे?" बहुत कुछ जैसे डांटकर बोला डाक्टर। "जो करेगा उसे ही समझाना पड़ेगा। यह भी क्या लिखने-पढ़ने की चीज़ है?"

"अभी तक तो उसे आ जाना चाहिए था।" धुर्जटि ने चिन्तित भाव से दीवाल-घड़ी की ओर देखा। निशिकान्त उनसे कुछ दूर खड़ा था। पास आकर पूछा, "किसकी बात कर रहे हैं, बाबू?"

"नई नर्स की।"

"ओह, उन्होंने कुछ देर पहले फोन किया था कि आज नहीं आ सकेंगी। तबियत खराब है।"

"तब फिर?" डाक्टर की ओर देखकर जैसे उसीसे प्रश्न किया धुर्जटि ने और तुरन्त बाद ही उसकी आंखें कनिका से मिल गईं। वह पास ही खड़ी थी लेकिन शायद व्यस्तता में अभी तक दोनों में से कोई किसीकी नज़र में नहीं पड़ी थी। धीरे-धीरे सकुचाती हुई-सी आगे आई और डाक्टर तथा धुर्जटि के चेहरे की ओर देखकर बोली, "यदि मुझे समझा दें, तो···"

"कौन हैं आप?" जानना चाहा डाक्टर ने। कनिका दुविधा में पड़ गई है देखकर धुर्जटि की ओर घूमकर बोले, "शायद पेशेण्ट की कोई आतमीया हैं?"

"जी नहीं, साहब की स्टेनो हैं। बहुत अच्छी लड़की हैं।" बड़े बाबू के कानों में प्रश्न जाते ही उन्होंने आगे बढ़कर उत्तर दिया।

अब धुर्जटि भी पहचान गया। बोला, "ओह, तभी आप जानी-पहचानी-सी लग रही थीं। दो-एक बार आपको चाचा जी के आफिस में देखा है। लेकिन आपको क्या रात में यहां रहने में असुविधा नहीं होगी?"

"और फिर तुम ख़ुद भी तो अभी-अभी बीमारी से उठी हो।" तत्काल बोल उठे बड़े बाबू।

कनिका बोली, "इसकी आप चिन्ता मत कीजिए। हां, यदि मेरे घर पर खबर पहुंचा सकें, तो ठीक रहे।"

"सो कोई मुश्किल काम नहीं है। तुम एक चिट्ठी लिख दो, मैं अभी भेजने की व्यवस्था कर देता हूं।"

डाक्टर इस पूरे वार्तालाप को चुपचाप सुन रहा था। इस बार बोला, "कभी टाइफाइड के रोगी की देखभाल की है?"

"जी हां, की है। दो वर्ष पहले मेरी दीदी को टाइफाइड हुआ था।"

"ठीक है, आप जरा इधर आइए।"

एक ओर ले जाकर डाक्टर ने कहा, "रोगी की अवस्था बहुत खराब है। लोगों की आवाजें सुनकर आंखें मलकर देखते-भर हैं—किसीको पहचान सकते हैं, ऐसा नहीं लगता। कहां क्या कष्ट है या दर्द है, यह भी नहीं बताते।"

कनिका जब डाक्टर के साथ रोगी के बिस्तर के पास पहुंची तो हठात् हृदय में हलचल-सी मच गई। इतने दिनों तक दो हाथ दूर रहकर भी जिसकी आंखों की तरफ नहीं देख सकी, एक दिन एक ही गाड़ी में चलते हुए भी पूरे रास्ते डर और संकोच की जड़ता में सिकुड़कर बैठे रहना पड़ा था, आज अकस्मात् पल-भर में उनके एकान्त सान्निध्य में रहना पड़ रहा है। सिर्फ यही नहीं, संकट के समय में एक इतने बड़े अमूल्य जीवन की सेवा का दायित्व-भार अपने इन दो असमर्थ दुर्बल हाथों में उठाना पड़ रहा है। हालांकि किसीने इसके लिए उससे कहा नहीं है। जब यहां आई थी और इतनी देर से घर के इस कोने में खड़ी रही थी, तब तक वह खुद भी इस बात को नहीं जानती थी। उसके बाद इस ज्वराक्रान्त मुंह की ओर देखकर, इस रिक्त, प्रताड़ित, असहाय और दीन जैसे लेटे व्यक्ति को देखकर, उसके पूरे तन-मन में खलबली-सी मच गई। एक बार भी सोचकर नहीं देखा कि वह उनकी क्या लगती है, उसका क्या अधिकार है? सिर्फ एक ही बात मन में आई—जैसे भी हो, अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी इन्हें बचाना पड़ेगा।

बड़े बाबू चिट्ठी के लिए प्रतीक्षा कर रहे थे। रोगी के सम्बन्ध में कनिका को जो निर्देश देने ज़रूरी थे उन्हें देकर जब डाक्टर चले गए तो

धुर्जटि उसे पास के छोटे कमरे में ले गया, जहां बैठकर गुप्ता साहब ग्राफिस का काम करते थे। कनिका ने पैड से एक कागज़ फाड़कर पेंसिल से लिखा :

"दादी, मेरे साहब बहुत बीमार हैं। टाइफाइड है। प्रायः बेहोशी की अवस्था में हैं। बड़े बाबू के साथ देखने आई थी। लेकिन इनकी हालत को देखते हुए आज की रात मुझे यहीं रहना पड़ेगा। कल सुबह यहीं से ग्राफिस चली जाऊंगी। शाम को घर लौटकर पूरी बात बताऊंगी। मेरे लिए किसी भी बात की चिन्ता मत करना। पत्र-वाहक के साथ मेरी एक साधारण साड़ी ग्रौर ब्लाउज़ भेज देना।

—तुम्हारी कना"

नर्स पहले ही चली गई थी। विज़िटर्स दल ने भी एक-एक करके विदा ली। कनिका ने ग्रांचल का कोना मज़बूती से कमर के चारों ग्रोर लपेट लिया ग्रौर काम में लगने जा रही थी कि धुर्जटि ने बाधा डाल दी। बोला, "पहले हाथ-मुंह धोकर एक कप चाय पी लीजिए।"

"यह सब बाद में होगा।" मृदु हंसती हुई संकोच-भरे स्वर में बोली कनिका।

"बाद का मतलब है बहुत रात। एक बार हाथ लगाने पर क्या सहज ही छुटकारा मिल सकेगा?"

निशिकान्त भी वहीं खड़ा था। उसने भी यही ग्रनुरोध किया। फिर कनिका ने आपत्ति नहीं की और हाथ-मुंह धोने के लिए गृहिणी के बाथरूम में जा पहुंची। सुन्दर, सुसज्जित एवं आरामदायक स्नानघर था। ताख पर ग्रंग-सज्जा के बहुत-से उपकरण रक्खे थे। जितने कीमती थे उतने ही कमनीय भी। आईने के दोनों ओर दो तीव्र बत्तियां जल रही थीं। सिर पर एक पंखा घूम रहा था। स्नानघर चारों ग्रोर से जगमगा रहा था। कनिका ने उसे बार-बार देखा। हठात् आंखों के सामने तैर आया कुछेक गज़ दूर का वह कमरा जिसमें इस विशाल ऐश्वर्य के स्वामी रोग-शय्या पर पड़े हैं, उनका दुःखित मलिन रूप।

हाथ-मुंह धोकर स्नानघर से निकलने के बाद निशी ही उसे अपने साथ खाने के कमरे में ले गया। विस्तीर्ण डाइनिंग टेबिल के चारों ग्रोर

चमचमाती कुर्सियां सजी हुई थीं और एक ओर पीने का पानी तथा उसके पास ही चाय का सामान रखा था। कनिका के घुसते ही रसोइया 'टी-पाट' से चाय कप में ढालने को तत्पर हो गया। धुर्जटि बगल में खड़ा था। चारों ग्रोर देखकर कनिका भीत स्वर में बोली, "यह क्या? इतना खाने का सामान!"

"इतना कहां है? जब तक उधर काम से छुट्टी मिलेगी, तब तक तो यह सब बड़े मज़े से हजम हो जाएगा। बैठिए।"

"ग्राप जो नहीं बैठ रहे हैं? ग्रापके खाने की चीज़ें कहां हैं?"

"मैं सिर्फ एक कप चाय पीऊंगा।"

"सिर्फ चाय पीने से नहीं चलेगा। अच्छा ठहरिए, मैं ठीक कर देती हूं।"···कहकर, पास से एक खाली डिश उठाकर खुद की प्लेट में से खाने का कुछ सामान उसमें रख दिया। रसोइया चाय ढालने जा रहा था कि बीच में ही कनिका बोल पड़ी, "तुम रहने दो, मैं कर लूंगी।"

कमरे में आते ही कनिका तत्काल रोगी की सेवा में लग गई। स्पन्ज किया, कपड़े वगैरह बदले, बिस्तर की चादर एवं तकिये की खोली बदलकर उसे सहेजकर ठीक किया, रोगी को दवा और हल्का खाना खिलाया। इसके बाद डाक्टर ने ग्रौर भी जो-जो निर्देश दिए थे उन्हें पूरा करने के पश्चात् कनिका ने घर को ठीक करने में हाथ लगाया। धुर्जटि, निशिकान्त एवं एक नौकरानी ने भी उसका हाथ बंटाया। चीज़ों को यथास्थान रखकर कमरा साफ करने के लिए झाड़ू उठाते ही निशिकान्त बोल पड़ा, "यह क्या कर रही हैं। उसे दीजिए, झाड़ू वह निकाल देगी।" कहकर नौकरानी की ओर ग्रंगुली उठाई। कनिका रुकी नहीं। कमरे के कोने से धूल-मैला निकालते-निकालते बोली, "मैं ग्राज इसे दिखा देती हूं, कल से यही करेगी।"

"छिः छिः, इसीलिए आप खुद के हाथों घर में झाड़ू लगाएंगी।"

"इसमें हर्ज क्या है?"

रोगी के पास सारी रात किसीके रहने की ग्रावश्यकता थी। कनिका ने अकेले ही यह भार लेना चाहा था। लेकिन धुर्जटि किसी तरह राज़ी नहीं हुग्रा। तय हुग्रा, प्रथम प्रहर वह जागेगा। उसके बाद एक बजे वह

कनिका को बुला लेगा।

मलिना के कमरे में ताला बन्द था। उसके सोने की व्यवस्था वहीं हुई। निशिकान्त के पीछे एवं धुर्जटि के साथ-साथ कमरे के भीतर घुसते ही कनिका का हृदय हिल उठा। उसे लगा, जैसे वह यहां अवांछित, अनाधिकारी है। यहां की जो मालिकन है, वह जैसे अभी बाहर गई है, अभी लौट आएगी और आते ही जानना चाहेगी, 'कौन हो तुम ?' तब क्या उत्तर देगी वह। इसी तरह की एक अद्‌भुत अनुभूति ने क्षण-भर के लिए उसे अभिभूत कर दिया था लेकिन धुर्जटि की बात से सहसा ज्ञान लौट आया। उसने कहा था, "आपको ज़रा असुविधा होगी। अपरिचित जगह···"

"नहीं, नहीं, असुविधा भला क्यों होगी ?···वे कब आएंगी ?"

दीवाल पर टंगे विशाल चित्र की ओर आंखें उठाईं कनिका ने। धुर्जटि ने उसकी दृष्टि का अनुसरण करते हुए कहा, "कुछ पता नहीं। लगता है, अभी कुछ दिन और लगेंगे।"

इसके बाद स्वाभाविक इच्छा हुई कि पूछे, कहां गई हैं ? लेकिन पूछा नहीं। उसका इतना कौतूहल दिखाना शायद शोभा नहीं देगा। वह बात धुर्जटि ने अपने-आप बताई, "मैंने अन्दाज़ से विभिन्न पतों पर कुछ टेलीग्राम दे दिए हैं। मिले या नहीं, यह नहीं जानता। न मिलने की संभावना ही ज़्यादा है। एक जगह तो गई नहीं हैं। इलाहाबाद से दिल्ली होते हुए बम्बई जाने की बात थी। उसके बाद फिर किस ओर गई हैं, कौन जानता है।"

"शायद घूमने गई हैं ?"

"नहीं, ठीक घूमने नहीं; उनका वही 'शुभानन्द'···ओह, उसके बारे में तो आप जानती ही नहीं हैं। बाद में बताऊंगा, अब आप सो जाइए।"

धुर्जटि के जाते ही कनिका दरवाज़ा बन्द कर बत्ती बुझाकर सो गई। लेकिन नींद नहीं आई। इतने नरम बिछौने और ऊंचे तकिये पर सोने का अभ्यास नहीं था। वह अस्वस्थ तो थी ही, उसके साथ अगले दिन की चिन्ता भी जुड़ गई। धुर्जटि की बातों से उसकी समझ में यही आया कि मिसेज़ गुप्ता के लौटने का अभी कुछ निश्चित नहीं है। जब तक नहीं लौटतीं, तब

तक इस अवस्था में इन्हें छोड़कर जाना किसी भी तरह सम्भव नहीं था। लेकिन वह हर समय यहां रह भी तो नहीं सकती थी। आफिस है, फिर घर भी जाना पड़ेगा। दादी के साथ परामर्श करना ज़रूरी था। धुर्जटि के साथ भी इस बारे में विचार-विमर्श करना पड़ेगा। बहुत रात तक इन्हीं सब विषयों पर सोचते-सोचते पता नहीं कब नींद आ गई थी कि दरवाज़े पर सामान्य-सा शब्द होते ही टूट गई। दरवाज़ा खोले बिना ही पूछा, "कौन है ?"

"मैं, धुर्जटि।"

"वे कैसे हैं ?"

"सो रहे हैं।"

"अच्छा, आप जाकर सो जाइए, मैं अभी आती हूं।"

दूसरे दिन सुबह आठ बजे डाक्टर ने आकर देखा। कनिका उससे पहले ही नहा चुकी थी और बालों को पीठ पर फैलाए कमरे में धूप ले रही थी। चारों ओर देखकर बोले, "अरे वाह, देखता हूं, रातों-रात वेश ही बदल डाला है ! गुड।" फिर बोला, "पेशेण्ट कैसा है ? जो-जो करने के लिए कहा था···"

"यथाशक्ति मैंने आपके सभी आदेशों का पालन किया है।"

"टैम्परेचर चार्ट देखूं। रात में ज्वर इससे ज़्यादा बढ़ा तो नहीं ?"

"नहीं।"

"वेरी गुड साइन, एण्ड इट मस्ट बी ड्यू टू यू," कहकर उसके चेहरे की ओर देखकर हंस पड़ा। कनिका की दोनों झुकी हुई आंखों में भी एक लजीली मृदु हंसी का स्फुरण दिखाई दिया। डाक्टर रोगी की बगल में थर्मामीटर लगाकर इधर-उधर देखते हुए बोला, "धुर्जटि कहां हैं ?- लगता है, आपको पाकर महीने-भर की नींद एक दिन में ही पूरी कर रहे हैं ?"

"रात में बहुत देर से सोने गए थे, इसलिए मैंने अभी जगाया नहीं।"

सुबह बुखार और भी कम था। बेहोशी भी नहीं थी। डाक्टर ने रोगी के चेहरे पर ज़रा झुकते हुए पूछा, "अब कैसा लग रहा है, मिस्टर गुप्ता ?"

अत्यन्त क्षीण स्वर में उत्तर मिला, "अच्छा।"

"अब कोई डरने की बात नहीं है। मिस···क्या नाम है आपका ?"

कनिका की ओर देखते ही वह बोली, "कनिका सेन।"

"जब मिस सेन मिल गई हैं, तो आशा करता हूं कि हफ्ते भर के भीतर ही आपको स्वस्थ कर दूंगा।"

कनिका चेयर के पास ही खड़ी थी। डाक्टर की इन अन्तिम बातों का अनुसरण करके ही गुप्ता साहब ने शायद उसकी ओर आंखें घुमाई थीं। कनिका ने भी देखा। नहीं, कल की तरह दृष्टि भावशून्य और मलिन नहीं थी, बहुत कुछ स्वच्छ थी एवं उसमें चेतना लौट आने की प्रतिच्छाया भी थी।

कनिका के हृदय में गुदगुदी-सी हुई—इतनी देर बाद उसे पहचान सके हैं।

६

यह कहानी जिस समय की है, उस समय टाइफाइड की विशेष दवा नहीं थी। डाक्टर लोग बहुत ही असहाय दृष्टि से रोग की अवस्था लक्ष्य करके चलते थे, और इस बारे में हमेशा होशियार रहते थे कि आसपास से और कोई जटिलता न आ जाए। ज्वर का उतार-चढ़ाव बहुत दिनों तक चलता। उस समय रोगी की धैर्यशील सेवा-शुश्रूषा ही उसे बचाने का प्रधान उपाय था। रुपये देकर पेशेवर नर्स से इसकी थोड़ी-सी पूर्ति तो हो जाती है, लेकिन पूरी नहीं। इसलिए अपने आदमी की ज़रूरत पड़ती है।

जिस दिन हिमांशु गुप्ता आफिस से ज्वर लेकर लौटे थे, उस समय घर में नौकर-चाकरों को छोड़कर अपना कहने लायक आदमी एक निशिकान्त ही था। मलिना उससे कुछ दिन पहले ही रवाना हो गई थी। 'शुभानन्द निलय' की ख्याति सिर्फ बंगाल ही नहीं उससे बाहर भी फैल चुकी थी। दूर-दूर से अनेक प्रतिष्ठानों से निमंत्रण आने लगे थे। इसी बीच मलिना ने कवि और दो अन्य कलाकारों को भेजकर मध्य प्रदेश के कुछ दुर्लभ लोक-नृत्य और दार्जिलिंग ग्रामांचल के कुछ पहाड़ी स्वर संग्रह कर लिए थे जिससे कि विषय-सूची में एक सर्व भारतीय प्रभाव की सृष्टि हो जाए। नाना प्रदेशों से बहुत-से साग्रह आमंत्रण इसके प्रमाण थे कि उसकी यह चेष्टा बहुत सफल हुई थी। कुछ शहरों को क्रमवार जोड़कर शोभन ने एक लम्बी सफर-तालिका तैयार की थी। मलिना की भी यही आकांक्षा थी। बार-बार जाने-आने के बदले एक साथ कई जगहें हो आने के उद्देश्य से ही वे दल-बल सहित निकले थे। जाने से पहले हमेशा की तरह पति को बता दिया था और साथ ही यह भी कह दिया था इस बार उसे लौटने में देर होगी। कितनी देर लगेगी, कहां-कहां जा रहे हैं, आदि के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का कौतूहल प्रकट किए बिना गुप्ता साहब मे शाह

की तरह सिर झुकाकर बोले थे, "ठीक है।"

मालिक का ज्वर देखकर निशिकान्त व्याकुल हो उठा था, और उनके यह कहने पर भी कि व्याकुल होने लायक कुछ नहीं है, उसने धुर्जटि को गुप्त रूप से खबर भेज दी थी। गुप्ता साहब के व्यक्तिगत चिकित्सक डाक्टर सोम उस समय कलकत्ते में नहीं थे। धुर्जटि अपनी पहचान का एक डाक्टर ले आया था। इतनी देर में उनकी बीमारी की खबर पूरे आफिस में फैल गई और तत्काल डाइरेक्टर बोर्ड के सदस्यों और अधिकारियों ने भीड़ करनी शुरू कर दी थी। जी० एम० बीमार है। ऐसे-वैसे डाक्टर पर उनकी चिकित्सा का भार नहीं सौंपा जा सकता। इसलिए धुर्जटि के डाक्टर को रद्द करके और भी बड़े डाक्टर को बुलाया गया। लेकिन कलकत्ते में बड़ा डाक्टर एक ही तो नहीं था, और जिनके हाथ में चुनाव का भार था वे भी किसी एक डाक्टर के सम्बन्ध में एकमत नहीं थे। फलस्वरूप हर समय नये-नये विशेषज्ञों का आविर्भाव होने लगा। उसके बाद जैसा कि प्रायः होता है, चिकित्सा में गड़बड़ी और रोगी के स्वास्थ्य में द्रुत गति से पतन होने लगा। भाग्य से इसी समय डाक्टर सोम आ गए और गुप्ता साहब ने अपनी चिकित्सा का सम्पूर्ण भार सविनय उन्हींके हाथों में सौंप दिया। इससे कई लोग मन ही मन दुखित हुए और 'करने दो जो खुशी' का भाव लेकर एक-एक करके अलग खड़े हो गए। सिर्फ जो नीचे स्तर के लोग थे अर्थात् मन ही मन चिन्ता अनुभव करने के सिवाय जिनकी और क्षमता नहीं थी, वे ही बीच-बीच में आकर देखने लगे।

कनिका भी इसी तरह अन्य लोगों के साथ एक बार केवल देखने के लिए आई थी। क्योंकि बीमारी की बात सुनकर उसका मन बहुत व्याकुल हो उठा था। घटना-चक्र में फंसकर इस गंभीर दायित्व का भार एक रात के भीतर उसके हाथों में आ गया था। नर्स, स्वीपर, नौकर, नौकरानी—सब अपने-अपने काम करते, लेकिन सभी की दृष्टि एक व्यक्ति पर केन्द्रित थी मानो रोगी के सम्बन्ध में विशेष दायित्व उसीका है, और तो सब उसके कर्मचारी हैं। उसने यह भी देखा कि धुर्जटि भी, जो उस परिवार का सिर्फ आत्मीय ही नहीं बल्कि मालिक का विशेष स्नेही था, प्रत्येक कदम पर 'कनिका दीदी' के चेहरे पर देखता रहता था।

जिस दिन सबसे पहले वह यहां आई थी, उसके दूसरे दिन शाम के समय घर जाकर कनिका ने अपनी दादी को पूरी बातें खोलकर बता दी थीं उन्होंने उसका सिर्फ समर्थन ही नहीं किया था बल्कि उत्साह दिलाकर उसी रात उसे फिर भेज दिया था। उन्हें एक मात्र चिन्ता यही थी कि उसका खुद का शरीर तब तक भी अच्छा नहीं हुआ था, इसलिए कहीं फिर तबियत खराब न हो जाए। बोली थी "उन्हें किसी चीज़ की कमी तो है नहीं, एक आदमी की जगह दो आदमी रख लेना। सिर्फ निरीक्षण का भार अपने ऊपर रखना। यदि मुझमें शक्ति होती तो मैं भी तुम्हारे साथ चलती।"

कनिका हंस दी थी, "रक्षा करो, मां। दो-दो रोगी एक साथ नहीं सम्भाल सकूंगी।"

दादी ने एक और बात कही थी, "औरतों को पग-पग पर क्या-क्या नहीं सहन करना पड़ता है। अच्छे काम में भी बुराई करने वालों की कमी नहीं है। हो सकता है, इस बात को लेकर भी अनेक तरह के लोग अनेक तरह की बातें करें। यदि कानों में पड़े भी तो ध्यान मत देना। खुद की इज़्ज़त बचाकर जो उचित समझो करती जाना।"

दादी की बात का तात्पर्य समझने लायक उम्र और बुद्धि उसमें बहुत पहले ही आ गई थी। उसने खुद इस बारे में नहीं सोचा हो, यह बात नहीं है। धुर्जटि से कहकर दोनों समय के लिए दो नर्सों का और दिन-रात के लिए एक नौकरानी का प्रबन्ध उसने दूसरे दिन से ही कर लिया था। रात प्रायः रोगी के पास ही गुज़ारनी पड़ती थी, इसलिए उसने गृह-स्वामिनी के कमरे में सोना छोड़ दिया था। आफिस-कमरा मालिक के बेडरूम के साथ ही था। बीच में एक दरवाज़ा था। चेयर-टेबिल हटाकर वहीं एक तख्ते पर साधारण बिस्तर बिछाकर सोने की व्यवस्था कर ली थी।

लेकिन जो कुछ भी करे, संसार के ज़्यादातर लोग टेढ़ी नज़रों से देखेंगे इससे कनिका अनभिज्ञ नहीं थी। आफिस के जिन सहकर्मियों ने पहले उसका उत्साह बढ़ाया था, एक दिन उन्हींके लिए उसका यह सेवा-कार्य नाना प्रकार के रसीले और मुंह-रोचक टीका-टिप्पणी का विषय हो उठा। आफिस के बड़े अधिकारी लोग भी पीछे नहीं रहे। यह बात उसके कानों में न पड़े, इस ओर किसीका ध्यान नहीं था। सिर्फ क्लब-रूम, टिफिन-शेड

ही नहीं, ग्राफिस के विभिन्न कमरों से भी नाना प्रकार की छोटी-मोटी बातें, दबी हंसी उसे कभी-कभी व्यथित और विस्मित कर देती थी। मन टूटने लगता और हाथ-पैर शिथिल हो जाते। फिर भी दादी की बातें याद करके सब कुछ सह जाने की चेष्टा करती। बोलने दो उनके जो मन में ग्राए बातों से शरीर में घाव तो नहीं होते। घाव शायद नहीं होते लेकिन कभी-कभी उससे भी बड़े कष्ट का सामना करना पड़ता है। कनिका को भी एक दिन उसीका सामना करना पड़ा।

गुप्ता साहब ने ग्रभी-ग्रभी इस घातक बीमारी का एक खतरनाक मोड़ पार किया था। जब तक टाइफाइड एक सहज-साध्य व्याधि के क्रम में नहीं पहुंचता, तब तक उसके दीर्घ स्थायी ग्राक्रमण के रास्ते में कितने ही प्राण-घातक मोड़ होते हैं जिन्हें डाक्टरी भाषा में क्राइसिस कहते हैं। ग्रौर भी आश्चर्य की बात यह है कि ये क्राइसिस बीमारी भोगने का निर्दिष्ट समय व्यतीत होने पर दिखाई देते हैं। डाक्टर ग्रपना हिसाब रखते हैं। और ग्रात्मीय-स्वजन तथा सगे-सम्बन्धी सांस रोके प्रतीक्षा करते हैं। रोगी कैसा है, पूछने पर कहते हैं, ग्रभी तो अच्छा ही दिखाई देता है, जब तक तेरह दिन न काट दे तब तक कुछ नहीं कहा जा सकता। तेरह दिन पार हो जाने के बाद इक्कीस दिन की ग्राशंका में वे फिर मन ही मन दिन गिनने शुरू कर देते हैं।

रीति-अनुसार हिमांशु के लिए वह 'इक्कीस' दिन का धक्का ही संगीन हो उठा था। कुछ दिनों से लगातार होश नहीं था। एक दिन तो डाक्टर सोम तक निराश हो गया था। धुर्जटि भी खुद पर ग्रौर दायित्व नहीं ले सका। हिरन को 'केबुल' एवं सीमा के पति को एक ग्रर्जेण्ट टेलीग्राम भेज दिया था, जब कि वह जानता था, दोनों ही निरर्थक हैं। हिरन के लिए तत्काल इतनी दूर से ग्राना सम्भव नहीं था और सीमा के लिए तो ग्रौर भी असम्भव। दो-एक दिन के भीतर ही वह प्रसूति-सदन में भर्ती होने वाली थी, इसलिए टेलीग्राम की खबर भी उसे नहीं बताई गई। पहले ही चिट्ठी में उसके पति ने धुर्जटि को पूरी बातें खोलकर लिख दी थीं एवं टेलीग्राम के उत्तर में लिखा था—"इस अवस्था में सीमा को अकेली छोड़कर ग्राना उसके खुद के लिए भी सम्भव नहीं है।"

कनिका को लगातार चार-पांच दिन इसी मकान में काटने पड़े थे, आफिस भी नहीं जा सकी थी। दो रातें तो बैठे-बैठे ही कट गई थीं। दिन में भी प्रायः हर समय बिछौने के पास रहना पड़ता था। सबके दबाव के साथ अनुरोध करने पर उठकर हाथ-मुंह धोकर दो दाने भात खाकर फिर आ बैठती। जिसने देखा अवाक् हो गया। वे आपस में बातचीत करते, इस तरह कोई नहीं कर सकता, उनकी पत्नी और लड़की भी नहीं। नौकरानी को जब यह मालूम हुआ कि यह लड़की साहब के आफिस में नौकरी करती है, और उनकी कोई सम्बन्धी नहीं है तो बिलकुल हक्की-बक्की-सी रह गई। उसके बाद प्रायः यही कहती, "ज़रूर पिछले जन्म में इनका कोई सम्बन्ध था। अन्यथा भला इतना कोई कर सकता है ?"

कुछ दिनों तक लगातार गैरहाज़िर रहने के बाद आफिस जाते ही कनिका को ए० जी० एम० ने बुलाया। वे कुछ लिख रहे थे। तिरछी नज़रों से एक बार कनिका की ओर देखा, फिर लिखते चले गए। कनिका वहीं खड़ी रही। बहुत देर बाद फिर सिर उठाकर कलम का ढक्कन बन्द करते हुए बोले, "क्या खबर है शायद इतने दिनों बाद अब आफिस की याद आई है आपको ?"

प्रश्न के तरीके से सारा शरीर जल उठने पर भी कनिका ने संयत भाव से उत्तर दिया, "इन कुछ दिनों में उनका बुखार बहुत अधिक बढ़ गया था इसीलिए···"

"मुझे तो लगता है, आप भी बहुत अधिक बढ़ गई हैं। इस आफिस में सभी उनके सबोर्डिनेट्स हैं, लेकिन इतनी मालिश···जो हो, यह आपका व्यक्तिगत मामला है। मैं काम का आदमी हूं, काम को महत्त्व देता हूं। फिर आप क्या कर रहीं हैं, क्या नहीं कर रही हैं, इसे लेकर मैं अपना दिमाग खराब नहीं करना चाहता।··· यह टाइप करके ले आइए।" कहकर कागज़ का पुलिन्दा कनिका की ओर बढ़ा दिया। कनिका के बायें हाथ में एक नोट-बुक थी और दाहिने हाथ में पेन्सिल। उनकी ओर एक बार देखकर जहां थी वहीं खड़ी रही, आगे बढ़कर कागज़ों को पकड़ा नहीं। जी० एम० तेज़ स्वर में बोले, "क्या हुआ ?"

"किसी टाइपिस्ट को बुला दूं ?"

"क्यों, क्या आप यह काम इसी बीच भूल गईं ?" मज़ाक के स्वर में बोले जी० एम० ।

"यह मेरा काम नहीं है ।"

"ज़रूर आप ही का काम है । यू आर आलसो ए टाइपिस्ट । उन लोगों से बहुत ज़्यादा तनख्वाह मिलती है आपको ।"

कनिका के जवाब देने से पहले ही हेड क्लर्क एक फाइल लेकर भीतर घुसा । कनिका के झुके हुए चेहरे की ओर देखकर बोला, "क्या हुआ ?" उत्तर न पाकर साहब की ओर आंखें घुमाईं । वे कड़ुवे स्वर में बोले, "अतिरिक्त प्रश्रय मिलने से जो होता, है वही । टाइप करना इनका काम नहीं है ।"

बड़े बाबू कनिका से बोले, "तुम ज़रा बाहर चली जाओ ।" फिर बॉस की ओर देखकर बोले, "वह स्टेनोटाइपिस्ट है । आप जो डिक्टेशन देंगे, वे सभी उसे खुद टाइप करने पड़ेंगे । इसे छोड़कर बाकी जो कुछ टाइप का काम होगा उसके लिए दूसरे लोग हैं ।"

"जानता हूं। यह सब मुझे फिर से नहीं समझना पड़ेगा। लेकिन यह तो कोई ज़रूरी नहीं है कि डिक्टेशन देने लायक चिट्ठियां रोज़ होंगी। जिस दिन डिक्टेशन का काम नहीं हो, या मेरे पास समय न हो, उस दिन एक जवान लड़की बैठे-बैठे तनख्वाह गिनेगी, यह कैसी व्यवस्था है ।"

हेड क्लर्क ने हंसकर जवाब दिया, "क्या किया जाए, सर । स्टेनो का यही नियम है । उन्हें इन्हीं टर्म्स पर नौकरी पर रखा है । क्या टाइप करना है, मुझे दीजिए, अभी करवा देता हूं ।"

"इसकी कोई जल्दी नहीं है । आपका क्या काम है, बताइए ।"

चार दिन के बाद । गुप्ता साहब का ज्वर उतर गया था । रोग के और कोई लक्षण नहीं बचे थे । लेकिन वे बहुत दुर्बल हो गए थे । वे एक-दो बातें बोलते-बोलते ही हांफने लगते । डाक्टर सोम कुछ देर पहले ही गए थे । जाते समय कह गए थे, "इसी समय सबसे ज़्यादा होशियार रहने की ज़रूरत है । कल-पुर्ज़े फिर से नये रूप में तैयार हो रहे हैं । वेरी डेलिकेट मशीनरी । ज़रा-सा इधर-उधर होते ही विपत्ति का सामना करना पड़ सकता है । हम लोगों के काम में थोड़ी-सी भी शिथिलता नहीं आनी चाहिए ।

वैसे अब तो अच्छे हो गए हैं, चिन्ता की कोई बात नहीं है। ऐसे चिन्ता करने से कैसे चलेगा। दवाई, पथ्य, सिर धोना, शरीर पोंछना—जब-जब जिस-जिस चीज़ की ज़रूरत हो, प्रत्येक काम घड़ी की सुई की तरह करते जाना होगा।"

हठात् कनिका की ओर आंखें उठाकर हंसते-हंसते बोले थे, "जब तक हम लोगों की हेड नर्स मौजूद है, तब तक मैं ज़रूर एकदम निश्चिन्त हूं। शी केम लाइक ए गाड-सेण्ड। यदि कनिका नहीं आती तो इतनी जल्दी पेशेण्ट को अच्छा करना मुश्किल था।"

इधर कुछ दिनों से उन्होंने स्नेह और मज़ाक से कनिका को हेड नर्स के नाम से पुकारना शुरू कर दिया था।

जाने से पहले रोगी के पास जब विदा लेने पहुंचे तब बोले थे, "अच्छा अब मैं चलता हूं, मिस्टर गुप्ता। और कोई ट्रबल तो नहीं है?"

"नहीं, आपने जो किया है..."

"नहीं, नहीं, क्या किया है मैंने। जस्ट प्रोफेशनल ड्यूटीज़; जो हर डाक्टर करता है। किया है इन्होंने—धुर्जटि और कनिका ने। और विशेषकर मैं कनिका को ही इसका श्रेय दूंगा। मुझे तो बहुत-से घरों में जाना पड़ता है लेकिन अकेले इतनी हमदर्दी और एक्सपर्ट नर्सिंग मैंने कहीं नहीं देखी। आश्चर्यजनक लड़की है। इसे देखकर मुझे कभी-कभी फलोरेन्स नाइटिंगेल की याद आ जाती है।...अच्छा, चलता हूं।"

जिस बाप को कनिका ने बहुत पहले खो दिया था, कई दिनों तक लगातार डाक्टर बाबू के साथ काम करने के फलस्वरूप उनके घनिष्ठ सम्पर्क में आकर उसे जैसे उनमें अपने उन्हीं पिता की प्रतिच्छाया देखने को मिली। उनके मुंह से अपनी प्रशंसा सुनकर लज्जा से सिर नहीं उठा सकी। यदि आंखें उठा पाती तो देखती कि उस ओर से दो निष्प्रभ एकाग्र आंखें मुग्ध दृष्टि से उसके चेहरे की ओर देख रही हैं।

फ्लोरेन्स नाइटिंगेल। गुप्ता साहब की चेतना में फिर यह बात गूंज उठी।

बहुत दिन पहले की बात है। उस समय हिमांशु गुप्ता स्कूल के छात्र थे। उनकी अंग्रेज़ी की पाठ्य-पुस्तक में एक निबन्ध था—'लेडी विद दि लैम्प'।

फ्लोरेन्स नाइटिंगेल की कहानी। उसका एक अंश वे स्कूल छोड़ने के बाद भी कई दिनों तक भूल नहीं सके थे। गंभीर रात्रि। अस्पताल की वड़ी बत्तियां बुझी हुईं। बहुत-से रोगी सो गए थे, किसी-किसीके क्षीण कंठ से यंत्रणा का कातर शब्द तैर रहा था। परिचारिकाओं में से कोई नहीं जाग रही थी। प्राय: अन्धकारमय कारीडोर में एक श्वेतवसना नारी-मूर्ति धीरे-धीरे नि:शब्द आगे बढ़ रही थी। उसके बायें हाथ में एक मोमबत्ती थी। जो जाग रहे थे वे आश्चर्यचकित दृष्टि से आंखें मलकर देख रहे थे। और सब कुछ अन्धकार में ढका हुआ था, सिर्फ तैर रहा था एक चेहरा—स्नेह, करुणा और उत्कंठा में दीप्तिमय। यही अद्भुत चित्र हिमांशु के किशोर मन में घर कर गया था। फिर बड़े होने के बाद कब खो गया, मालूम नहीं चला।

बीमारी के इन दिनों में एक रात बहुत वर्षों पुरानी स्मृति के आवरण को भेदकर वही मूर्ति आंखों के सम्मुख तैर आई थी। उस समय कितने बजे थे, वे नहीं जानते। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। हठात् उन्होंने देखा कि उनकी शय्या से कुछ हाथ दूर एक टेबल पर झुककर जैसे कोई कुछ लिख रहा है। सामने एक टेबल-लैम्प जल रहा है जो इस ओर शेड से ढका हुआ था, उस ओर का पूरा उजाला उसके झुके हुए चेहरे पर पड़ रहा था। अकस्मात् उनकी स्मृति के पन्नों में कुछ अक्षर भक्-से जल उठे—'लेडी विद दि लैम्प'। पहले उन्हें लगा कि या तो यह स्वप्न है या फिर दुर्बल अर्ध-चेतन मस्तिष्क का असर है। हो सकता है अनजाने में उनके मुंह से एक नि:श्वास निकल पड़ी होगी। एकाएक उसीके शब्द से चौंककर उस चेहरे ने आंखें उठाकर देखा। गुप्ता साहब को फ्लोरेन्स नाइटिंगेल का वही वेदनामलिन उत्कण्ठित चेहरा दिखाई दिया। उसीकी तरह वह भी धीरे-धीरे उठकर शय्या के पास आई। झुककर बहुत ही सावधानी से छाती पर से हटी हुई चादर गले तक खींच दी। फिर नि:शब्द वापस अपनी पहले वाली जगह पर जा बैठी। साथ ही साथ बत्ती भी बुझा दी।

नाइटिंगेल जब अपने रोगी की शय्या पर जाकर खड़ी होती थी तो वे बहुत कष्ट से सिर उठाकर उसके सफेद कल्याणकारी हाथ चूमते थे। हिमांशु की भी इच्छा हुई, कुछ देर के लिए जो शीतल, सुडौल हाथ उनकी

छाती के पास तक आए थे, एक बार अपनी रोग-शीर्ण अंगुलियों से उनका स्पर्श करें। लेकिन कर नहीं सके। यह आकांक्षा मन में ही रह गई। नींद का बहाना बनाए पड़े रहे। निःशब्द चारिणी का वह क्षणिक स्पर्श ही उसकी समस्त मधुरता लिये हुए उनके अन्तर मन के गुप्त कोने में अक्षय होकर रह गया। वह कुछ नहीं जान पाई।

डाक्टर के चले जाने के बाद भी हिमांशु बहुत देर तक उस रात के उसी दृश्य में खोए रहे। दीवार-घड़ी के कर्कश शब्द से हठात् उन्हें होश आया। आंखें मलकर देखा, कनिका हाथ में फीडिंग कप लिये सिरहाने के पास खड़ी थी। कोमल स्वर में बोली, "फल का रस पी लीजिए।"

"रख दो, बाद में पी लूंगा।"

"बाद में नहीं, इसे अभी पीना ज़रूरी है।"

हिमांशु मन ही मन हंसे। आफिस में जो लड़की उनकी प्रत्येक बात को सिर हिलाकर स्वीकार कर लेती थी, प्रतिवाद तो दूर रहा, आंखें उठाकर देखने तक का साहस नहीं करती थी, वह वही आज्ञाकारी स्टेनो-ग्राफर कनिका सेन है। आज उसके शासन में उन्हें चलना पड़ रहा है। सुई-भर भी इधर-उधर होने का उपाय नहीं है। अर्थात् दोनों रूप ही कितने सरल और स्वाभाविक हैं। औरतों का यह विचित्र रूप ही उनकी सम्पत्ति है। जिसके पास इसका अभाव है—अनजाने ही हठात् एक लम्बी सांस निकल पड़ी। कनिका ने साग्रह ज़ोर देकर कहा, "क्या हुआ, लीजिए न।"

"लाओ।"

धीरे-धीरे रस पीने के पश्चात् जब उनके दोनों होंठ तौलिए से पोंछकर वह जा रही थी, हिमांशु ने पूछा, "कितने बजे हैं?"

"दस"

"दस! तुम आफिस नहीं गई?"

"नहीं।"

"क्यों?"

कनिका ने जवाब नहीं दिया। कुछ देर प्रतीक्षा करके गुप्ता साहब फिर बोले, "ऐसे ही बहुत कमा चुकी हो। और फिर मैं तो अब अच्छा हो गया हूं। ये सब दवाई-पथ्य खिलाने के लिए तुम क्यों रहती हो यहां?

क्या इतना भी और किसीसे नहीं होता ? चट्-से दो दाना भात खाकर चली जाग्रो। ग्रभी भी ज़्यादा देर नहीं हुई है। बल्कि ड्राइवर से···"

"मैं ग्रब ग्राफिस नहीं जाऊंगी।"

"नहीं जाग्रोगी। क्यों ?"

"काम छोड़ दिया है।"

"यह क्या ! ···नहीं, नहीं, तुम मेरे लिए नौकरी छोड़ दोगी, यह किसी भी मूल्य पर नहीं हो सकता।"

"ग्रापके लिए नौकरी क्यों छोड़ूंगी ?"

"तब फिर ?"

"ग्राप ज़रा ग्रौर स्वस्थ हो जाइए, फिर बताऊंगी। अब इन सब बातों के विषय में एक भी शब्द मत बोलिए। देखिए, इतने में ही कितने थक गए हैं।"

पास ग्राकर तौलिए से माथे पर आई हुई पसीने की बूंदें सयत्न पोंछते-पोंछते ज़रा घूमकर बोली, "सोने की चेष्टा कीजिए। ज़ंगले की खिड़कियां बन्द कर देती हूं।"

हिमांशु सचमुच हांफ रहे थे। और कोई बात न कहकर आंखें बंद किए पड़े रहे। लेकिन भीतर की दुश्चिन्ता दबी नहीं रह सकी। ग्रांखों में चेहरे पर उभरी हुई रेखाग्रों ने कनिका को भी बेचैन कर दिया। मन ही मन सोचा, शायद बोलने से ज़्यादा हानि न बोलने में है। इसीलिए बोले बिना कोई उपाय नहीं है।

ग्यारह बजे सिर धोकर स्पंज करने की व्यवस्था थी। और दिन (ग्राफिस न जाना होता तो) यह काम कनिका ही ग्रपने हाथों करती थी। लेकिन यह सोचकर कि कहीं फिर से इस बारे में कुछ कह न बैठें, ग्राज उसने दूसरा ग्रादमी भेज दिया। काम खत्म होने के बाद गुप्ता साहब ने उसी आदमी को भेजकर कनिका को बुलाया, ग्रौर कमरे में उसके घुसते ही किसी तरह की भूमिका बांधे बिना बोले, "रेज़िग्नेशन ज़बानी दिया है या लिखकर ?" कनिका बोलने जा रही थी—ग्रब भी आप यही बात सोच रहे हैं, लेकिन रुक गई। यह समझकर कि ग्रब बचने का कोई उपाय नहीं है, बोली, "चिट्ठी लिखकर दे ग्राई हूं।"

"लेकिन क्यों ? रेज़िग्नेशन देने की क्या ज़रूरत थी ? क्या वहां के साहब लोगों ने तुमसे काम छोड़ने के लिए कहा था ?"

"सिर्फ इतना कहते तो मैं काम छोड़कर नहीं ग्राती।"

"तब क्या बोले ?"

कनिका चुप है, देखकर असहिष्णु भाव से गुप्ता साहब बोल उठे, "सब काम बच्चों जैसा करती हो। जाग्रो, ग्रपनी नोटबुक ग्रौर पेन्सिल ले ग्राग्रो। मैं एक चिट्ठी डिक्टेट करा रहा हूं। टाइप करके बड़े बाबू के हाथ में देते ही तुम्हारा रेज़िग्नेशन लेटर वापस मिल जाएगा।"

कनिका शान्त विनीत स्वर में बोली, "मैं यही चाहती हूं कि वे रेज़िग्नेशन एक्सेप्ट कर लें।"

"क्या बे-सिर-पैर की बातें करती हो।" क्रोधित स्वर में बोले गुप्ता साहब, "यदि कोई सीरियस घटना हो भी गई हो, तो उसका निवारण हो सकता है। बाद में सोच-समझकर जो भी होगा निश्चित कर लिया जाएगा। चट्-से झोंक में ग्राकर यह चिट्ठी लिखकर तुमने ठीक नहीं किया।"

"जो कुछ किया है, चारों ग्रोर से सोच-समझकर ही किया है, झोंक में आकर नहीं किया।"

कनिका के कंठ-स्वर में निश्चित संकल्प की एक ऐसी दृढ़ता थी कि हिमांशु चकित हुए बिना नहीं रह सके। कुछ देर गुप्ता साहब उसके मुंह की ओर देखते रहे, फिर बोले, "जब तुम नहीं मान रही हो तो मैं इसे लेकर ग्रौर दबाव नहीं डालूंगा। फिर भी एक बात मेरी समझ में नहीं ग्रा रही है। तुमसे जिसने जो भी कहा हो, उसके लिए नौकरी छोड़ने की क्या ज़रूरत थी ? वह तो तुम्हारा एम्प्लायर नहीं है, एम्प्लायर डिक्सन कम्पनी है।"

"फिर भी, जिनके पास मुझे काम करना पड़ता है···"

यहां तक सुनते ही गुप्ता साहब बिजली से लगे धक्के की तरह चमक उठे, "बनर्जी ने तुम्हें कुछ कहा ?"

"सिर्फ यदि मुझे कहते तो मैं उसका जवाब दे देती। लेकिन उसने जब बीच में आप तक को···"

कनिका हठात् रुक गई। हिमांशु के मुंह से भी और कोई बात सुनाई नहीं दी। यह अन्तिम शब्द दोनों ही अपने मन में रटते गए, 'आप तक को···।'

"मुझे माफ कर दीजिएगा, मैं और कुछ नहीं बोल सकूंगी···।" और कनिका द्रुत गति से कमरा छोड़कर बाहर चली गई।

"बनर्जी (अर्थात् वर्तमान में जो जी० एम० के पद पर काम कर रहे हैं) अच्छा आदमी नहीं है और सीधे रास्ते पर नहीं चलता, गुप्ता साहब इससे अनजान नहीं थे। कितनी ही बार वह झमेलों में फंस चुका था, जिससे उन्होंने ही उसे मुक्ति दिलाई थी। शायद इसी कारण से उन्हें वह अच्छी दृष्टि से नहीं देखता। अवसर व सुविधा मिलने पर 'प्रत्युपकार' की चेष्टा करेगा, यही उसके लिए स्वाभाविक था। पहले भी उसने यही किया था। इस बार भी शायद इसी उधेड़बुन में है। वे अपने लिए चिन्तित नहीं थे। लेकिन इस लड़की पर पीछे से जो आक्रमण करने का षड्यन्त्र किया था, उससे वे बेचैन हो उठे। उसीके लिए कुछ करने की ज़रूरत थी।

पहले तो गुप्ता साहब ने सोचा कि वे कल ही उसे बुलाकर इस विषय में संक्षिप्त प्रश्न पूछकर देखेंगे कि उसका आशय क्या है। लेकिन दूसरी बार सोचने पर···अंग्रेज़ी में जिसे कहते है—सेकेण्ड थाट—उन्हें लगा कि इससे लाभ क्या होगा ? इसमें कोई सन्देह नहीं कि बनर्जी इस आरोप को अस्वीकार कर देगा। वह जैसा आदमी है, हो सकता है, चिल्ला उठे, "मैं ऐसी बातें बोल सकता हूं, यह आप विश्वास करते हैं ?" जिसने कहा है उसका नाम पूछने के लिए दबाव डालना शुरू कर देगा। उसके बाद भीतर ही भीतर और भी कटु हो उठेगा। षड्यन्त्र एक ऐसा शस्त्र है, जो अपनी लक्ष्य-वस्तु पर कभी भी आमने-सामने आक्रमण नहीं करता। लेकिन ओट में और अन्धकार में उसकी अबाध गति है। बनर्जी अकेला नहीं है, उसका एक दल है। यदि वे सब मिल जाएं, तो उनकी दीर्घ अनुपस्थिति से अवसर पाकर वहां एक गंदे माहौल की सृष्टि कर सकते हैं। हो सकता है, इस बीच थोड़ी-सी कर भी ली हो। उन्हें रोग-शय्या पर पड़े रहने के कारण खबर नहीं मिली, और अब भी विशेष नहीं मिलेगी। वे जिस उच्च आसन पर बैठते हैं, वह उनके व्यूह के बाहर की चीज़ है। लेकिन कनिका एकदम

उनके व्यूह के बीच रहती है। इसके अलावा वह एक लड़की है और छोटे पद पर नौकरी करती है। उसके लिए इनका विरोध करना या उपेक्षा करके चलना सहज नहीं है। हो सकता है इन्हीं सब बातों को विचार करके घटना के और भी पेचदार होने से पहले ही नौकरी से इस्तीफा दे आई हो। भावुकता में हठात् कुछ कर देने लायक लड़की नहीं है वह। असल में क्या हुआ है, वे नहीं जानते और उसके मुंह से स्पष्ट रूप से जानने लायक विषय भी नहीं है यह। निश्चय ही ऐसा कुछ हुआ है, जिसके फलस्वरुप उसने जो किया है उसे छोड़ उसके लिए और कोई दूसरा रास्ता नहीं था।

किन्तु उसके बाद ? कनिका की इस सामान्य-सी नौकरी पर एक बड़ा परिवार निर्भर है। यही उनका एकमात्र आश्रय-स्थल है। उनकी क्या हालत होगी ? वह खुद भी कहां जाएगी ? वे कुछ सहायता कर देंगे, यह भी उन्हें सम्भव नहीं लगा। वे गरीब होते हुए भी बहुत ही सम्भ्रान्त हैं। शत-प्रतिशत अभाव में भी पारिवारिक सम्मान-बोध दान ग्रहण करने में बाधा उत्पन्न करेगा। और फिर, वे देंगे भी किस आधार पर ? कोई दूसरी नौकरी दिलाने में सहायता करेंगे, इसकी भी कोई शीघ्र सम्भावना नहीं दिखाई देती। कौन जानता है, कितने दिन बाद स्वस्थ हो सकेंगे।

यह सोचने पर कि परोक्ष रूप से एवं अनजाने में उन्होंने कनिका की गहरी क्षति की है, गुप्ता साहब व्याकुल हो उठे। लेकिन किसी ओर किनारा दिखाई नहीं दिया। तभी उन्हें लगा कि इस क्षति को और बढ़ने देना उचित नहीं है, हालांकि अभी तक उनके शरीर की जो अवस्था थी उसमें कनिका के न रहने पर एक दिन भी नहीं चलता। इसके अलावा, उसकी अनवरत सेवा और निरन्तर सान्निध्य के वे ऐसे अभ्यस्त हो गए थे कि दो-एक क्षण भी न देख पाने पर चारों ओर उन्हें खाली-खाली-सा लगता। मुंह खोलकर यह बात उन्होंने आज तक किसीसे नहीं कही लेकिन नौकर-चाकर तक जैसे यह बात समझते थे। चारों ओर नज़रें दौड़ाकर शायद उसे ही खोज रहे थे कि नौकरानी ने आकर पूछा, "दीदी को बुला दूं ?" उन्हें कब किस चीज़ की ज़रूरत पड़ेगी—सिर्फ वही जानती थी। जब वह नहीं रहती, सब असहाय हो जाते। ये सब बातें सच थीं। फिर भी कनिका के भविष्य की बात सोचकर यही उचित लगा कि उसे अविलम्ब

अपने से दूर रखा जाए। हिमांशु जानते थे कि इस प्रस्ताव के उच्चारण मात्र से चारों ओर से आपत्तियां उठेंगी—कुछ सशब्द कुछ निःशब्द। नौकरानी आंखों से एतराज़ करेगी, हालांकि मुंह खोलकर कुछ नहीं बोलेगी। डाक्टर बाबू तत्काल एक ही वाक्य में इसे रद्द कर देना चाहेंगे, धुर्जटि प्रतिवाद करेगा, और कनिका खुद? मन ही मन वह भी विरोध करेगी लेकिन स्पष्टतः 'नहीं' भी नहीं कहेगी। विह्वल आंखों से देखेगी, फिर निःशब्द चली जाएगी।

हठात् ख्याल आया, जो समस्या दिखाई दी है, क्या उसका यही एकमात्र समाधान है? जो क्षति हो गई है, क्या उसे विदा कर देने से ही उसका प्रतिकार हो जाएगा? इतने दिनों ज़रूरत थी तो तुम्हारी सेवा ली थी, आज ज़रूरत खत्म हो गई है अतएव चली जाओ।···क्या यही बात सुनने के लिए उसने उन दुर्दिनों में उनकी सेवा का दायित्व-भार सिर पर उठाया था? उसके बाद क्या नहीं किया था उसने? अपने स्वास्थ्य की चिन्ता नहीं की, मान-सम्मान की चिन्ता नहीं की, अपने स्वजनों की सुख-सुविधाओं की उपेक्षा की। अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर लगातार दीर्घ रात्रि के जागरण का कष्ट और थकावट ग्रहण करके, एक अनात्मीय रोगी पुरुष की सर्वांगीण परिचर्या में अपने को बिना सोचे-समझे सौंपकर आज वह एक ओर झूठी बदनामी और दूसरी ओर बेकारी और भूख के द्वार पर आ खड़ी हुई, क्या उसके लिए हिमांशु गुप्ता का कोई दायित्व नहीं है?

अवश्य है। इसे हिमांशु हज़ार बार स्वीकार करते हैं। लेकिन उस दायित्व का पालन कैसे करेंगे, उनके करने योग्य क्या है, किसी भी तरह सोच नहीं पाते हैं।

दवा पीने का समय होते ही कनिका कमरे में घुसकर टेबिल पर से शीशी और गिलास लेकर बिस्तर के पास आ खड़ी हुई। दवा डालते हुए बोली, "एक साहब आपसे मिलना चाहते हैं। आफिस में जाने के लिए कह दूं?"

डाक्टर के निर्देशानुसार आफिस-सम्बन्धी बातचीत की एकदम मनाही कर दी गई थी। जी०एम० साहब से जो भी मिलने आता, उससे आफिस में

ही जाने के लिए अनुरोध किया जाता। ज़्यादातर गुप्ता साहब की अनुमति की प्रतीक्षा न करके निशिकान्त ही यह डाक्टरी आदेश उन्हें सुना देता। यह आदमी उसे कुछ दूसरे ढंग का लगा इसलिए कनिका से बताए बिना उसे विदा कर देना उचित नहीं समझा। कनिका ने भी आगन्तुक को ओट से देख लिया था और न जाने क्या सोचकर एक बार साहब से पूछने आई थी। पहले तो हिमांशु बोले, "आने दो।" लेकिन बाद में जानना चाहा कि क्या नाम बताया उसने ?

"निशी के पास कार्ड है। ले आती हूं।"

विज़िटिंग कार्ड हाथ में देते ही हिमांशु साग्रह बोल उठे, "मिस्टर मैक-फारसन। जल्दी से ले आओ। मेरे सिर के नीचे एक तकिया और लगा दो।"

दो-एक मिनट के भीतर ही एक दीर्घदेही अंग्रेज़ हंसते हुए भीतर आया। उम्र ज़्यादा हो गई थी लेकिन कमर अभी भी सीधी थी। हां, दाहिना पैर ज़रा खींचकर चलते दिखाई दिए। बहुत ज़ोरदार स्वर में बोले, "हैलो गुप्टा, हाऊ डू यू डू ? तुम्हारी आफिस में गया था। सुना, तुम छुट्टी पर हो और अस्वस्थ भी। ओह, देखता हूं तुम बहुत दुर्बल हो गए हो, पहचान में नहीं आते। क्या बीमारी है ?"

"टाइफाइड, अभी ठीक हुआ हूं। आप बैठिए।"

"नहीं, मैं कुछ दिन बाद आऊंगा। इस अवस्था में तुम्हें डिस्टर्ब करना ठीक नहीं है।"

"नहीं, नहीं, आपको कितने दिनों बाद देखा है, अभी कैसे चले जाएंगे ? अब बिलकुल ठीक हूं, बात करने में कोई कष्ट नहीं होता।"

"आल राइट। यू आर दि सेम गुड ओल्ड गुप्टा। बहुत ऊंचे उठ गए हो, लेकिन स्वभाव वैसा ही है।"

गुप्ता साहब ने लज्जित होकर विषय-परिवर्तन किया, "आप इस समय कलकत्ते में ?"

"एक रोयल कमीशन का मेम्बर होकर आया हूं। करीब एक महीने इंडिया में घूमना पड़ेगा। कलकत्ते में भी एक वीक हूं।"

पुरानी बातें उठीं। मैकफारसन किसी समय डिक्सन कम्पनी के डिरेक्टर बोर्ड के चेयरमैन थे। उस समय गुप्ता साहब एक साधारण अधिकारी

थे। अचानक कभी-कभी मुलाकात हो जाती थी। लेकिन साहब 'गुप्टा' को बहुत स्नेह करते थे एवं अच्छी नज़र से देखते थे। उस समय जी० एम० भी अंग्रेज़ था। उससे प्रायः कहते, "'गुप्टा' की तरह का लड़का तुम्हारी आफिस में एक भी नहीं है। देख लेना, कभी वह बहुत बड़ा आदमी बन जाएगा।" जनरल मैनेजर के पद पर प्रोमोशन मिलने के बाद हिमांशु ने भी पहली चिट्ठी मैकफारसन को ही लिखी थी। उस समय वे छुट्टी लेकर विलायत चले गए थे। उन्होंने सस्नेह अभिनन्दन करके उत्तर दिया था। उसके बाद भी कभी-कभी चिट्ठी-पत्री का आदान-प्रदान होता रहा। कुछ दिनों बाद यह सिलसिला अपने-आप बन्द हो गया। इतने दिनों बाद कलकत्ते में पैर रखते ही साहब 'गुप्टा' से मिलने दौड़े आए थे। आफिस में मुलाकात नहीं हुई, अस्वस्थ सुनकर घर पर धावा कर दिया था।

मैकफारसन के कमरे में घुसते ही कनिका तकिए को ठीक करके बाहर चली गई थी। इधर-उधर की बातों के बाद मैकफारसन बोले, "ज़रूर मिसेज़ गुप्टा मुझे पहचान नहीं पाई है। उस बार अपने हाथों से तैयार किया हुआ लूची एण्ड आलूदम खिलाया था, तुम्हें याद है?"

"ज़रूर याद है। इस सामान्य-सी चीज़ को आपने कितनी खुशी से खाया था। लेकिन वह मिसेज़ गुप्ता नहीं है।"

"मिसेज़ गुप्टा नहीं है? तब?"

हिमांशु कुछ देर के लिए दुविधा में पड़ गए, फिर बोले, "मेरी एक निकट की आत्मीया है।"

कनिका कमरे से बाहर दरवाज़े की ओट में खड़ी थी। यह बात कानों में पड़ते ही उसका हृदय कांप उठा।

साहब बोले, "आई सी, मिसेज़ कहां गई हैं?"

"कुछ दिनों के लिए ज़रा बाहर गई है।"

"बाहर? तुम्हारी इस बीमारी में। हाउ इज़ दैट? झगड़ा हो गया है क्या?"···कहकर ज़ोर से हंस पड़े।

हिमांशु मृदु हंसकर बोले, "एक कल्चरल प्रतिष्ठान का चार्ज लेकर जाना पड़ा था।"

"तो फिर, देख रहा हूं तुम्हारी अवस्था भी मेरी तरह की ही है। हां,

मैंने सुना है, इंडियन हाई सोसाइटी की महिलाएं इस ओर बहुत आगे बढ़ गई हैं।"

"मिसेज़ मैकफारसन अच्छी हैं तो ?"

"यू मीन ओल्ड आर दी न्यू वन ?"

हिमांशु की विस्मित दृष्टि की ओर देखकर बोले, "तुम जो सोच रहे थे, वह बात नहीं है। एग्नेस, माई फर्स्ट वाइफ, जीवित है और बहुत अच्छी तरह है। फिर भी मैंने दूसरी शादी की है। अवश्य, यह आश्चर्य करने की बात है। बट आई हैड टू, और यह सुनकर और भी आश्चर्य होगा, शी इज़ ऐन इंडियन, आई मीन ऐंग्लो-इंडियन। फिर भी देखने में बहुत कुछ तुम्हारे बंगाल देश की लड़कियों की तरह है। काले बाल, काली आंखें, रंग भी गोरा नहीं है।"

हिमांशु क्या कहे, हठात् सोच नहीं पाए, दुःख प्रकट करे या प्रसन्नता। निःशब्द देखते रहे। मैकफारसन भी ज़रा अनमने-से हो गए थे। हठात् प्रश्न किया, "तुम्हारी उम्र कितनी हो गई है, गुप्टा ?"

"अड़तालीस।"

"तब अभी ठीक से नहीं समझोगे। दस-बारह वर्ष और बीत जाने दो, तब समझोगे कि तुम्हें, जिसे मेरी तरह जीवन-भर मेहनत करनी पड़ती है, अवकाश लेने के बाद सबसे बड़ी ज़रूरत होती है एक स्नेहशील आज्ञाकारी पत्नी की—हू विल प्ले ए डबल रोल—वाइफ ऐज़ वेल ऐज़ मदर। जानते तो हो, बूढ़े हो जाने पर मनुष्य की आवश्यकताएं बढ़ जाती हैं, कई तरह के विकट ख्याल आते हैं। इसलिए एक ऐसे साथी की ज़रूरत पड़ती है, जो उन सबको हंसती हुई, धैर्य के साथ सहन कर सके। हम लोगों के जीवन में इस चीज़ की बहुत कमी है।···आई ऐम अफ्रेड, आई ऐम बोरिंग यू।"

"नहीं, नहीं, आप बोलिए।"

साहब ने कुछेक सेकेण्ड कुछ सोचा। फिर अपनी पहले वाली कहानी पर लौट आए—"देश लौटकर देखा, मेरी पत्नी बहुत व्यस्त थी। जिसे हम लोग सोशल वर्कर कहते हैं। बहुत प्रतिष्ठानों के साथ जड़ित, किसीकी सेक्रेटरी तो किसीकी वाइस प्रैसिडेण्ट। पति बेचारे के लिए अपने भारी प्रोग्राम में से निकालकर पन्द्रह मिनट व्यय करना भी मुश्किल। कुछ दिनों

तक देखा। फिर एक दिन उससे स्पष्ट कह दिया—लुक हियर, लेट्स हैव ए डाइवोर्स बाई म्युचूअल एग्रीमेण्ट। वह चौंक उठी। 'क्यों?' कारण —'ग्राई वाण्ट ए होल टाइम पार्टनर।' पूरा जीवन व्यवसाय के जगत में कटा है, इसलिए वही टर्म्स मुंह से निकल गया। पत्नी घबड़ा गई, 'इसका मतलब?' मैं बोला—'डरने की कोई बात नहीं है, तुम्हारे सब काम आनरेरी हैं, यह मैं जानता हूं। तुम्हारी ग्रार्थिक व्यवस्था कर दी जाएगी।' इसके बाद कोई विशेष ग्रापत्ति नहीं दिखाई दी। महीने-भर के भीतर ही एक बहाना खड़ा करके झगड़े को खत्म कर दिया।"

साहब की भोली-भाली हंसी से घर भर उठा। गुप्ता साहब बात का प्रसंग पकड़ने के उद्देश्य से बोले, "ये ग्रापको मिली कहां?"

"यू मीन पामेला? बहुत मीठा नाम है, क्यों?"

हिमांशु ने सिर झुकाकर सहमति प्रकट की। साहब बोले, "वह ग्रौर भी मीठी है। यदि जानता कि तुम्हारे घर जाना पड़ेगा तो ले ग्राता।"

"क्या वे भी आपके साथ ग्राई हैं?"

"वाह, ग्राएगी नहीं? इस उम्र में इतने लम्बे सफर में ग्रकेला छोड़ देगी। जो हो, कैसे मिली, वह सुनो। ग्रकेले समय नहीं कटता था। इसलिए कभी-कभी ग्रार्ट गैलरी में जाकर चित्र देखता। एक दिन देखा—किसी इंडियन लैण्डस्केप के सामने एक लड़की बहुत देर से खड़ी है। देखकर बहुत आश्चर्य हुआ। उसमें इतना तन्मय होकर देखने लायक क्या हो सकता है। इस ओर घूमते ही पूछ बैठा, 'चित्र तुम्हें अच्छा लगा?' बोली, 'खू-ब।' 'क्यों? उसमें क्या खासियत है?' 'यह नहीं जानती। वह मेरे देश का चित्र है।' तब अच्छी तरह लक्ष्य करके मैं बोला, 'तुम ऐंग्लो-इंडियन हो?' उसने तत्काल जवाब दिया, 'नो, ग्राई ऐम एन इंडियन।' उत्तर बहुत ग्रच्छा लगा। मैंने देखा, तुम्हारे देश में ऐंग्लो-इंडियन लोग अपने को इंडियन कहने में लज्जा महसूस करते हैं, तुम लोग भी उन्हें इस देश का मानना नहीं चाहते। बातचीत शुरू हो गई। पूछा, 'क्या करती हो तुम?'

" 'दवा की दुकान में रिप्रेज़ेण्टेटिव का काम करती हूं।' "

साहब पाकेट से सिगरेट-केस निकालकर बोले, "कोई आपत्ति नहीं है

तो ?"

"क्या मुश्किल है। आपत्ति किसलिए ? अब तक मुझे खुद ही इसका ख्याल आना उचित था।"

"मैं तुम्हारे भरोसे नहीं आया हूं," कहकर हंस पड़े। हंसी रुकते ही हिमांशु ने फिर बात का सूत्र पकड़ा दिया, "बताइए, उसके बाद क्या हुआ ?"

" उसी दिन से पामेला मेरी घूमने की साथी हो गई। छुट्टी के दिन दोनों बाहर चले जाते। इंडिया की बातें होतीं। उसका बाप नहीं था, भाई-बहन की बातें होतीं। मैं अपने अवकाश-प्राप्त जीवन की बातें बताता। उसकी आंखें डबडबा उठतीं। एक दिन मैंने स्पष्ट प्रश्न किया, 'तुम मेरा भार लोगी ?' उसी क्षण सिर झुकाकर बोली, 'लूंगी।' मैं तो अवाक् रह गया था। जानते हो, उसकी उम्र क्या है ? पच्चीस, मेरे तीन भाग का एक भाग। शादी के बाद मैंने यह बात उठाई थी। वह बोली, 'आई हैव मैरीड यू, एण्ड नाट योर एज।' और एक दिन बोला था, 'मेरी तरह एक वृद्ध में तुमने क्या देखा, पामेला ?' उत्तर में धीरे-धीरे हंसने लगी। मेरे बार-बार दबाव डालने पर बोली, 'यह तुम नहीं समझोगे।' हो सकता है, पामेला ने ठीक ही कहा था। हम लोगों की···मतलब पुरुषों की दृष्टि इस ओर अन्धी होती है।···

" गुड हैवेन्स। तीन बज रहे हैं। अच्छा, अब मैं चलता हूं। अभी एक अर्जेण्ट एंगेजमैण्ट है। "

हाथ घड़ी की ओर देखकर उनके खड़े होते ही हिमांशु बोले, "मेरी तो उठने की शक्ति है नहीं। कलकत्ता छोड़ने से पहले दया करके यदि एक बार और आ सकें···"

"ज़रूर, ज़रूर। जाने से पहले मिलकर जाऊंगा।"

दरवाज़े के उस ओर बैठी कनिका ने भी पामेला की कहानी सुनते-सुनते समय का ज्ञान खो दिया था। 'तीन बज रहे हैं।'—यह बात कानों में पड़ते ही घबराकर उठ खड़ी हुई। दो बजे रोगी को एक कप ओवलटीन देनी थी। पूरा एक घण्टा ज़्यादा बीत गया और इसका बिलकुल भी ख्याल नहीं रहा। क्या हो गया था उसे। इस तरह की भूल इससे पहले तो कभी

नहीं हुई थी ।

जल्दी-जल्दी पथ्य तैयार करके जब कमरे में गई तो देखा हिमांशु आंखें बन्द किए निढाल-से पड़े हैं। हृदय कांप उठा। धुर्जटि के आने में अभी भी दो घंटे देर थी। सोच रही थी, डाक्टर को फोन करे या नहीं कि उसी समय उन्होंने आंखें खोलीं, जैसे किसी ध्यान से जाग उठे हों। मृदु हंसकर बोले, "क्या लाई हो ? खाने के लिए ? दो।"

ताकतवर दवा, पथ्य और उससे भी अधिक जी-जान से की गई त्रुटि-हीन सेवा के ज़ोर से गुप्ता साहब कुछ दिनों के भीतर ही उठकर खड़े हो गए। इतने दिनों में वर्षा ने विदा ले ली थी, कलकत्ते के आकाश के बादलों का रंग बदल गया था, गति भी धीमी हो गई थी। सुबह उठकर दक्षिणी बरामदे में ईज़ी चेयर पर बैठे सफेद स्वच्छ बादलों का विहार देखते-देखते यही अपेक्षा करते रहते कि कनिका कब आएगी। आजकल रात में रहने की ज़रूरत नहीं थी। सुबह ज़रा देर से आती, पूरा दिन काटकर, रात होते ही वापस चली जाती। कभी-कभी गाड़ी पहुंचा आती। हिमांशु मुंह से प्रायः यही बोलते, 'अब तो अच्छा हो गया हूं। रोज़-रोज़ इतना कष्ट करके इतनी दूर से तुम्हें दौड़कर नहीं आना चाहिए। कभी-कभी आकर देख जाया करो।"

यह उनके मन की बात नहीं है, यह समझने में कनिका को कोई असुविधा नहीं हुई। इसलिए जवाब न देकर चुप रहती। बीच-बीच में एक-आध दिन इच्छा से नहीं आती। दूसरे दिन बहुतों के पास बहुत-से उलाहने सुनने पड़ते। नौकरानी बोलती, बाबू कल दोपहर भर उदास-से गुमसुम सोए रहे; रसोइया बोलता, पूरे दिन प्रायः कुछ नहीं खाया; निशिकान्त बोलता, साहब बहुत रात तक सिरहाने बत्ती जलाकर किताब पढ़ते रहे··· इत्यादि। सब-कुछ सुनकर उनके पास जाकर बैठ गई। हिमांशु हंसकर बोले, "वे सब मेरी शिकायत कर रहे थे तो ?"

"करेंगे नहीं ? यदि आप कुछ नहीं मानें···"

"और अब कितना मानूंगा ? अब तो अच्छा हो गया हूं। तुम्हारे ये कायदे-कानून ज़रा ढीले कर देने में क्या दोष है ?"

"ढीले करने लायक समय जब आएगा, तब मैं खुद ही कर दूंगी,

आपको बोलना नहीं पड़ेगा। धुर्जटि बाबू ने क्या कहा कल ? मकान तय हो गया ?"

"एक तरह से तय ही समझो। अग्रिम भाड़ा भेजते ही हो जाएगा। लेकिन मेरा मन इसके लिए तैयार नहीं हो रहा है।"

"क्यों ?"

"यहीं अच्छा हूं। वहां अकेले-अकेले···"

"अकेले किसने कहा ? धुर्जटि बाबू ने छुट्टी की दरख्वास्त दे दी है। वे जाएंगे, मैं जाऊंगी।"

"तुम जाओगी ?" ईज़ी चेयर पर झूलते हुए बोले रहे थे। हठात् सीधे होकर बैठ गए और तीक्ष्ण विस्मित दृष्टि से उसके चेहरे की ओर देखने लगे।

"न जाने से चलेगा क्या ?" नितान्त सहज स्वर में बोली कनिका। "ऐसी अवस्था में इतनी दूर सिर्फ नौकर-चाकर पर भरोसा करके नहीं रहा जा सकता। धुर्जटि बाबू अकेले किस-किस तरफ देखेंगे। और फिर, यह सब लड़कों का काम तो नहीं है।"

"लेकिन तुम घर-बार, काम-काज छोड़कर मेरे साथ इतनी दूर कैसे जा सकती हो ? यह भी एक दिन की बात नहीं है।"

"काम-काज तो छूट ही गया है, घर-बार मेरे न रहने पर भी चल सकता है। दादी है, दीदी है।"

"तुम लोगों का गुज़ारा कैसे चल रहा है, यह भी नहीं जानता।" बहुत-कुछ जैसे अपने-आप से ही बोले गुप्ता साहब।

"किसी तरह चल रहा है। पोस्ट आफिस में कुछ रुपये थे, दादी के पास भी कुछ थे—"

"उसकी भी तो एक सीमा है। जब इस काम को छोड़ दिया तो और कहीं कुछ चेष्टा नहीं करनी चाहिए क्या ? मेरे साथ दूर जाकर बैठे रहने से कैसे चलेगा ? और फिर···नहीं, मेरे साथ तुम्हारा जाना नहीं होगा।"

फिर वही जनरल मैनेजर हिमांशु गुप्ता का कंठ-स्वर। जिसे कनिका रोग-शय्या पर इतने दिनों से देखती आई थी, ज़रूरत के अनुसार कभी-कभी मृदु धमकी भी दी थी, जिससे कभी ज़िद की थी, कभी अभिमान

किया था, यह मनुष्य उससे बिलकुल भिन्न है। इसकी बातें सिर्फ चुपचाप सुननी पड़ती हैं, इसको टालकर दूसरी बात नहीं कही जा सकती। कनिका स्तब्ध हो खड़ी रही। हिमांशु अपने-आप बोलते गए, "मेरी अच्छाई-बुराई, सुविधा-असुविधा—यही एकमात्र चीज़ है ? और दूसरी चीज़ें भी हैं।"

कनिका का जाना नहीं होगा, यह सुनकर रसोइया, नौकर, निशिकान्त सभी का उत्साह टूट गया। उन्होंने लक्ष्य किया था कि इतने दिनों तक कठिन बीमारी भोगते-भोगते 'मालिक' बहुत मूडी हो गए हैं, सहज ही विचलित हो उठते हैं, फिर किसीकी बात सुनना नहीं चाहते। एकमात्र 'दीदी' को छोड़कर उस समय उन्हें कोई नहीं संभाल सकता। धुर्जटि भी बहुत चिन्तित हो गया था। उसने पहले तो सोचा, एक बार उनके साथ बात करके देखे, लेकिन कनिका के मना करने पर चुप रह गया।

७

'चेंज' में जाने का दिन निश्चित हो गया। हिमांशु के मन में शुरू से ही कोई उत्साह नहीं था। उन्हें दो कारणोंवश इस 'चेंज' के प्रस्ताव को स्वीकार करना पड़ा था। प्रथमत: डाक्टर सोम के निर्देश के कारण। उन्होंने बहुत ज़ोर देकर कहा था कि वहां जाने पर तीन सप्ताह में जितना सुधार होगा कलकत्ते में रहने पर वहां तक पहुंचने में तीन महीने लग जाएंगे। दूसरा कारण ग्रौर भी बड़ा था। ज़रा ठीक होकर बैठने लायक होते ही डिक्सन कम्पनी के लोगों की भीड़ शुरू हो गई थी। देखने आने का बहाना करके ग्राफिस-सम्बन्धी अनेक जटिल विषयों की चर्चा करते। यह मानसिक दबाव तुरंत रोगमुक्त मस्तिष्क के लिए ग्रसह्य हो गया था। वहां से जाने को छोड़कर इससे बचने का ग्रौर कोई रास्ता नहीं था।

उस दिन के बाद चार दिन बीत गए, लेकिन कनिका नहीं ग्राई। सभी उसका रास्ता देखते बैठे थे। वह नहीं आएगी तो सामान कौन समेटेगा। खुद न जाने पर भी, क्या जाएगा क्या नहीं जाएगा, यह उसे ही तय करना पड़ेगा। जाने में ज़्यादा दिन नहीं रह गए थे। सिर्फ तीन दिन बचे थे। यह बात धुर्जटि के उठाते ही हिमांशु बोले, "एक बार खबर लेना ठीक रहेगा।" धुर्जटि खुद गया और उसे साथ लेकर ही ग्राया। ग्राकर गुप्ता साहब के पास खड़ी होते ही उन्होंने एक नज़र उसके चेहरे पर डाली और चौंक पड़े, "यह क्या ? तुम्हारी तबियत खराब थी क्या ?"

"नहीं तो, तबियत क्यों खराब होगी ?" उदास हंसी हंसकर बोली कनिका।

गुप्ता साहब सब कुछ समझ गए थे, इसलिए इस विषय पर उन्होंने ग्रौर बात नहीं उठाई।

कनिका कुछ देर प्रतीक्षा करके बोली, "मुझे बुलाया था ?"

"हां, अब सामान बांधना शुरू कर दो। तुम्हारे न होने से किसीका काम नहीं चल रहा है।"

कनिका जा रही थी कि बीच में ही लौटकर बोली, "कितने दिन रहेंगे वहां ? उसीके हिसाब से सामान का इन्तज़ाम करना पड़ेगा।"

"और कितने दिन ? करीब एक महीना।"

पांच बजने के कुछ देर बाद ही हिमांशु अपने कमरे में आकर बिस्तर पर बैठ गए। पास ही भाप निकलता हुआ एक काफी का प्याला रक्खा था। उससे कुछ दूरी पर टेबिल पर एक छोटी टोकरी में उनके ढेर सारे पहनने के कपड़े जमा करके कनिका साथ ले जाने के सूटकेस में सजा रही थी। उसके सामने खिड़की के कांच के भीतर से छनकर आती हुई आश्विन की सांझ की लाल रश्मियां उसके मुंह पर पड़ रही थीं। कमरे के बाहर द्रुत चाल के शब्द सुनाई पड़े और उसके साथ ही व्यस्त एवं उत्तेजित भाव से मलिना कमरे में घुसी। धुर्जटि दरवाज़े की चौखट पर खड़ा था। उसीने मलिना को सबसे पहले देखा और खुशी के स्वर में बोल पड़ा, "यह लो, चाची जी आ गईं।"

मलिना एक बार चारों ओर नज़र घुमाकर बोली, "लगता है, बड़े असमय में आ गई हूं।" वही व्यंग्यात्मक स्वर था। हठात् कुछेक पैर पति की ओर बढ़ाकर उनके चेहरे पर तीक्ष्ण दृष्टि डालती हुई बोली, "सुना है, बहुत बड़ी बीमारी हुई थी, तो मुझे खबर देने में क्या आपत्ति थी ? मैं मर तो नहीं गई थी, अथवा वैरागी होकर तो नहीं चली गई थी ?"

हिमांशु के कुछ बोलने से पहले ही धुर्जटि आगे बढ़ आया और बोला, "यह सब बातें बाद में होती रहेंगी चाचीजी। अभी आप उस कमरे में चलिए। इतनी दूर से थकी हुई आई हैं···"

मलिना ने जैसे सुना ही नहीं। इस तरह से कनिका की ओर आंखें उठाकर बोली, "यही शायद वे हैं !"

कनिका के हाथ का काम बन्द हो गया था। उसके उठकर गले में आंचल डालकर गृहिणी को प्रणाम करने का उपक्रम करते ही वे छिटककर पीछे हट गईं। हाथ हिलाकर बोलीं, "रहने दो, बहुत हो गया।"

सिर झुकाकर वह अपनी पहले वाली जगह लौटकर जा रही थी कि

मलिना ने रूढ़ स्वर में कहा, "ठहरो। यहां कौन लाया तुम्हें ?"

वह शायद बोलने जा रही थी कि मैं खुद ही आई हूं, लेकिन उससे पहले ही हिमांशु बोल उठे, "मैं लाया हूं।"

"तुम !" पति की ओर घमकर बोली मलिना, "क्यों ? रोग-सेवा के लिए ? क्या कलकत्ता शहर में नर्सों की कमी हो गई थी ?"

"आपके पैर पड़ता हूं चाची जी।" हाथ जोड़कर विनती के स्वर में बोला धुर्जटि, "वे भी अस्वस्थ हैं और आपको भी विश्राम की ज़रूरत है। यह सब कुछ समझने-समझाने का समय नहीं है। चलिए, अपने कमरे में जाकर बैठिए, चलिए।"

धुर्जटि के सामने आकर खड़े होते ही मलिना उसके पास से हटकर पति के पलंग की ओर कदम बढ़ाती हुई बोली, "तुम रुको, धुर्जटि। इस बात का फैसला मैं अभी कर देना चाहती हूं।"

"आप मुझसे कहिए। वे क्या जानते हैं ? वे तो बेहोश पड़े थे। जो कुछ कहना है—"

"धुर्जटि"—गुप्ता साहब के गम्भीर स्वर से सभी एकाएक एक साथ चौंक पड़े। धुर्जटि जल्दी से पास जाकर खड़ा हो गया। उन्होंने हाथ उठाकर उसे रुकने का इशारा किया, फिर पत्नी की ओर पलटकर शान्त स्वर में बोले, "अब बोलो, तुम क्या जानना चाहती हो ?"

"मैं जानना चाहती हूं, यह कौन है ? इस घर में काम करने का अधिकार किसने दिया इसे ?"

कनिका जो अब तक सूटकेस के पास खड़ी थी, अब आहिस्ते-आहिस्ते शायद सबकी नज़रों से बचकर बाहर चली गई।

हिमांशु बोले, "यह कौन है, तुम जानती हो; और रही अधिकार की बात ? वह इसने खुद प्राप्त किया है, किसीने दिया नहीं। त्याग, सेवा, महत्त्व से जो अधिकार खुद-ब-खुद मिलते हैं, किसीको मृत्यु के मुंह से बचाने पर उसके ऊपर जो अधिकार बचाने वाले का रहता है, यह वही अधिकार है।"

"तुम्हारी बड़ी-बड़ी बातें रहने दो। ये बातें मैं बहुत सुन चुकी हूं। तुम लोगों का कीर्ति-कलाप आज से तो शुरू नहीं हुआ कि मैं जानती नहीं।

लेकिन अब तक यह सब परदे में था, आज वह भी हट गया। तुम्हें पता है, चारों ओर बदनामी फैल गई है। हावड़ा स्टेशन पर पर रखते ही मैंने सब कुछ सुन लिया था।"

अब धुर्जटि के लिए वहां खड़े रहना सम्भव नहीं था। असहिष्णु भाव से सिर झुकाकर परेशान-सा बाहर चला गया। शायद मलिना भी ज़रा हांफ गई थी। कुछ देर बाद मज़ाक उड़ाने के स्वर में बोली, "वे महारानी कहां गईं ? किस चीज़ का प्रबन्ध हो रहा था ?"

हिमांशु ने जवाब नहीं दिया, यह देखकर ज़रा ऊंचे स्वर में बोली, "क्या हुआ ? बताते क्यों नहीं ?"

"मैं एक महीने के लिए बाहर जा रहा हूं।"

"शायद वे भी साथ जा रही हैं ?"

"हां।"

"उसे लेकर तुम 'चेंज' में जाओगे !" इस कथन के भीतर विस्मय की व्याकुलता के साथ-साथ दुःख का पुट भी था।

उसी समय कनिका कमरे में घुसी। उसके हाथों में कुछ समेटी हुई साड़ियां थीं। मालिक की ओर देखकर बोली, "मैं जा रही हूं।"

"नहीं, तुम ज़रा ठहरो, कनिका।" पत्नी से बोले, "हां, यह मेरे साथ जाएंगी।"

"जब लोग यह जानना चाहेंगे कि यह आपकी कौन है, तो आप क्या परिचय देंगे ?" जितना सम्भव था उतना विष ढालकर कहा मलिना ने, "शायद बोलोगे, मेरी पत्नी है।"

हिमांशु कुछ समय के लिए दुविधा में पड़ गए, फिर आंखें उठाकर कनिका के चेहरे की ओर देखा। क्या देखा, वे ही जानते हैं। तत्काल स्पष्ट एवं दृढ़ स्वर में बोले, "यदि इसकी सम्मति हो तो यह परिचय देने में मुझे बिलकुल भी हिचकिचाहट नहीं होगी। उसने जो कुछ मुझे दिया है वह एक पत्नी के सिवाय और कोई नहीं दे सकता।"

"क्या कहा !" विकृत स्वर में चीत्कार कर उठी मलिना। यह स्वर सुनकर धुर्जटि दौड़ा-दौड़ा कमरे में आया। उसकी ओर असहाय भाव से देखकर अस्फुट स्वर में उसे पुकारा मलिना ने, 'धुर्जटि !' इसके साथ ही

उसका सिर चकरा उठा। गिरने ही जा रही थी कि फुर्तीले हाथों से धुर्जटि ने उसे थाम लिया और किसी तरह बाहर ले गया।

कनिका कमरे में स्तब्ध-सी खड़ी रही। उसका चेहरा देखने से लगता था कि हिमांशु के मुंह से उसने अभी जो सुना था वह कितना भी साफ और स्पष्ट क्यों न हो, जैसे उसका एक वर्ण भी वह नहीं समझ सकी थी।

उस रात को कब किस तरह घर लौटी थी, पूछने पर शायद कनिका नहीं बता सकती। किसीसे बिना कुछ कहे कमरे में घुसते ही दरवाज़ा बन्द कर लिया था। दादी ने बहुत पुकारा, लेकिन कोई उत्तर नहीं दिया। वे व्याकुल हो गई। फिर मनिका ने डांट-डपटकर दरवाजा खुलवाया था। तब भी कनिका का वह विह्वल भाव खत्म नहीं हुआ था। उनके प्रश्न के उत्तर में उसने सिर्फ उदास दृष्टि से देखा था।

दादी ने शायद अनुमान लगा लिया था इसलिए सब कुछ सुनने के बाद भी बहुत देर तक कुछ नहीं बोली। लेकिन मनिका चुप नहीं रही। सिर झुकाकर दृढ़ स्वर में बोली, "नहीं, यह नहीं हो सकता। शादी-ब्याह कोई बच्चों का खेल नहीं है कि झोंक में आकर किसीके गले में माला पहनाने से ही हो जाती है? रुपये और इज़्ज़त ही सब कुछ नहीं हैं। इसे छोड़कर और क्या है उनके पास? पचास के आसपास उम्र है, एक जीवित पत्नी घर में है। इसके अलावा दो जवान लड़के-लड़की हैं।"

"किन्तु आदमी—?" जैसे स्वप्न से जागकर धीरे-धीरे बोली दादी।

"हां, मान लिया आदमी बहुत अच्छा है। किन्तु इससे क्या औरत का मन भर जाता है, उसकी पूरी साध, आकांक्षा मिट जाती है? और फिर बेचारे ज्योतिर्मय ने ही क्या बुरा किया है। कितने वर्षों से इसकी चाह में बैठा है। उसे क्या जवाब देगी?"

कनिका बड़ी चौकी के एक किनारे बैठी थी। पास की टेबिल पर दोनों हाथ रखे उनमें अपना सिर छुपाए थी। इतनी देर बाद असहनीय भाव से सिर हिलाकर बोली, "तुम चुप रहो, दीदी। मैं सोच नहीं पा रही हूं।"

मनिका ने बात को और बढ़ाया नहीं। उठती हुई बोली, "लो, अब उठो। और थोड़ा-सा कुछ खा लो।"

"मैं कुछ नहीं खाऊंगी। तुम खा लो।"

दादी ने उसके सिर पर हाथ फेरकर कहा, "खाओगी क्यों नहीं ? रातों को जाग-जागकर चेहरे की क्या हालत बना ली है, इसका कुछ पता है तुम्हें । मनि, तुम जाश्रो । खाना परोसो, मैं इसे लेकर आती हूं ।"

हाथ पकड़कर आहिस्ते से खींचते ही कनिका ने सिर उठाकर दादी को ज़ोर से जकड़ लिया, श्रौर उसकी छाती में मुंह छिपाकर रुंधे गले से बोली, "क्या करूं, तुम्हीं बताओ दादी ?"

उन्होंने तत्काल कोई जवाब नहीं दिया। श्रसमय में खो जाने वाले अपने पुत्र श्रौर पुत्र-वधू के शेष चिह्न श्रौर असीम स्नेह की पात्री, इस अकेली, आज्ञाकारी, श्रसहाय पुत्री के कंधे पर उन्होंने एक हाथ रख दिया श्रौर दूसरा हाथ उसके लम्बे खुले केशों के गुच्छों पर फेरने लगीं।—बहुत देर बाद धीरे से मृदु स्वर में बोलीं, "यदि और कोई समस्या होती तो मैं अपनी बुद्धि के श्रनुसार शायद कोई रास्ता निकाल देती। लेकिन इसमें तो किसीकी कोई बात नहीं चलेगी, बेटी। यहां तुम्हें जो चलाएगा, वह तुम्हारे हृदय में बैठा है। वह तुम्हारा अपना मन है, उससे पूछो।"

"नहीं, तुम्हीं बताश्रो।" उसी तरह सीने में मुंह छुपाए ही श्रश्रुजड़ित स्वर में बोली कनिका।

दादी कुछ देर सोचकर बोली, "मैं तो सोचती हूं, इसमें तुम्हारी भलाई ही है। लेकिन तुम्हारे लिए यह कितना कठिन है, यह मैं समझती हूं, कना। मैं भी तो एक श्रौरत ही हूं। लेकिन साथ ही यह व्यक्ति भी बहुत दुःखी श्रौर असहाय है।"

एक लम्बी सांस छोड़कर दादी चुप हो गईं। कनिका की मौन श्रौर न रुकने वाली अश्रुधारा से उनकी छाती के कपड़े तर होने लगे।

मलिना को उसके कमरे में सुलाकर, नौकरानी को बुलाकर, उसी समय जो करना था उसकी व्यवस्था करके, जब धुर्जटि दूसरे कमरे की श्रोर जा रहा था तो उसने देखा कि एक एकान्त कोना चुनकर शोभन चुपचाप बैठा सिगरेट पी रहा है। पास जाकर बोला, "श्ररे, तुम कब श्राए ? चाची जी के साथ तो नहीं देखा !"

"साथ होता तो देखते।"

"मतलब ?"

"प्लेटफार्म छोड़ते ही बनर्जी साहब ने उन्हें इस प्रकार पकड़ लिया कि मेरी तरह छोटे आदमी को पैदल ही आना पड़ा।"

"बनर्जी साहब ?"

"नहीं पहचाना ? तुम एकदम बेकार के आदमी हो। डिक्सन कम्पनी का इतना बड़ा डी० जी० एम०। दिन-भर मुंह में पाइप रहता है। फाक्स विदाउट ए टेल की अनायास कल्पना कर सकते हो, लेकिन बनर्जी विदाउट हिज़ पाइप ? इन्कान्सिवेबल।"

"तुम ठीक कहते हो, वह आदमी सचमुच गीदड़ है। उसीने सत्यानाश किया है।"

"तुम गलती कर रहे हो ब्रदर। यह सत्यानाश कोई बाहर से नहीं कर सकता बल्कि व्यक्ति खुद ही इसका बीज बोकर घूमता है। समझ नहीं सके ? (सीधा होकर बैठते हुए धुर्जटि की ओर देखकर) यही मलिना गुप्ता—व्यक्ति के हिसाब से एक प्रतिभा, इसकी प्रशंसा भी क्या कम मिलती है ? देश-देश से जोड़ी हुई इतनी ख्याति। लेकिन ख्याति होने से क्या होगा ? उसमें इण्टरनल जैलसी विद्यमान है। उसके पति के पास कौन आया, क्यों आया, कैसे आया। खिड़की से झांककर देख रहा था उसका चेहरा। एकदम हू-ब-हू हम लोगों के सामने वाली बस्ती की प्रसिद्ध पांचूवाला औरत की तरह लगा। वह जब अपने पति देवता के साथ बातें करती है, तो उसके हाथ में एक झाड़ू रहती है, अन्तर इतना ही था कि इसके हाथ में झाड़ू नहीं थी। यही सोच रहा था कि जितना भी उसे मनुष्य बनाने की चेष्टा क्यों न करो, औरत आखिर औरत ही रहती है। तुम लोगों के शैली ने ठीक ही कहा था, "फ़ेल्टी, दाइ नेम इज़ वूमन।"

"शैली नहीं, यह शेक्सपियर के नाटक में है।"

"एक ही बात है।" कहकर बहुत-सा धुआं छोड़ा शोभन ने।

धुर्जटि चिन्तित चेहरे से सामने की ओर देखकर बोला, "इस बार बात ज़्यादा जटिल हो गई है।"

"कौन-सी बात ? गुप्ता साहब उस महिला से शादी करना चाहते हैं, यही तो ? इसे मुश्किल कहते हो ? दिस इज़ दि ओन्ली सोल्यूशन। मैं तो सोचता हूं, इतने दिनों बाद उन्होंने एक काम की बात कही है। यदि कर

सके तो और कुछ साल बच जाएंगे। और यदि इस अवस्था में उन्हें मलिना देवी के कब्ज़े में रहना पड़ा तो जो फल होगा—उसका बंगला भाषा में कोई उच्चारण नहीं है, संस्कृत में कहता हूं—मरणं ध्रुवम्।"

"यह सब बाद की बातें हैं इसलिए इसके बारे में बाद में सोचा जाए। फिलहाल चाची जी को कुछ दिनों के लिए और कहीं हटा देने की ज़रूरत है। मैं अपने साथ ले जा सकता हूं, लेकिन हम लोगों के उस डेढ़ हाथ के घर में वे डेढ़ मिनट भी नहीं रह सकेंगी।"

"मेरे घर ले जाने की बात सोचते हो ? वहां भी मुश्किल है। फिर मेरी मां उन्हें बहुत अच्छी दृष्टि से नहीं देखती। कोई विशेष कारण नहीं है, ऐसे ही फिर भी, जब तुम कहते हो तो दो-चार दिन संभालने की चेष्टा करूंगा।"

एक नौकर ने आकर खबर दी, "मालकिन धुर्जटि को बुला रही हैं।"

"तो फिर यही व्यवस्था करता हूं।" कहकर वह उठकर चला गया।

दूसरे दिन करीब दो बजे हिमांशु को एक बार निकलना पड़ा था। बाहर जाने से पहले बैंक में कुछ चीज़ों के सम्बन्ध में कागज़ी व्यवस्था करनी ज़रूरी थी। धुर्जटि उस समय स्कूल गया हुआ था। निशिकान्त ने साथ जाना चाहा लेकिन वे सहमत नहीं हुए। बोले, "क्या ज़रूरत है ? ड्राइवर तो है ही।"

काम खत्म करके निकलते-निकलते चार बज गए। बहुत दिनों की 'रोग-शय्या की कैद' के पश्चात् यह प्रथम मुक्ति उन्हें बहुत अच्छी लगी। शरत ऋतु की इस सुन्दर सन्ध्या का और कुछ देर उपभोग करने की इच्छा हुई। और फिर मन की अवस्था, घर का परिवेश—सभी तो उस समय उन्हें बाहर की ओर खींच रहे थे।

ज़्यादा देर टहलने लायक शक्ति तब तक भी लौटी नहीं थी। थोड़ी देर चहलकदमी करने के पश्चात् ईडेन गार्डेन के पेड़-पौधों से ढकी एक निर्जन बेंच पर जाकर बैठ गए। कुछ देर बाद बेंच के दूसरी ओर दो युवक आकर बैठ गए। उनमें से एक युवक अत्यन्त दुःखी दिखाई पड़ रहा था और दूसरा उसे बीच-बीच में सान्त्वना दे रहा था, और इशारों द्वारा उसे

कुछ सम्मति देने की चेष्टा कर रहा था। हिमांशु उठने की बात सोच ही रहे थे कि अपना नाम कानों में ग्राते ही हठात् चौंक पड़े ग्रौर कौतूहलवश वहीं बैठे रहे, उठकर जा नहीं सके।

दूसरा युवक ग्रपने साथी से पूछ रहा था कि उनका परिचय कैसे हुग्रा, इस बारे में कुछ सुना ?

"सभी कुछ बताया है मुझे। उसीका जनरल मैनेजर है।"

"क्या कहते हो ! उनकी यह चरित्रहीनता ! मैंने तो सुना था कि ग्रादमी बहुत ग्रच्छा है। नाम भी बहुत है।"

"सिर्फ उन्हें कैसे दोष दूं। वह क्या कह रही थी, जानते हो ?"

"क्या ?"

"कह रही थी, यदि तुम उन्हें एक बार देखो तो तुम्हें भी दया ग्रा जाएगी, ज्योति दा। उनके पास सब कुछ होते हुए भी कुछ नहीं है। उनका ग्रपना कोई नहीं है। जबकि उन्होंने उनकी कोई इच्छा पूरी करनी बाकी नहीं छोड़ी। उतना दुःखी मनुष्य ग्रौर कोई नहीं है।"

"ग्राश्चर्य है। ग्रौरतों के मन का यह एक अद्भुत कंपलेक्स है। कहावत है ना ? 'देयर इज़ ए मदर इन एवरी वूमन !' मुझे तो लगता है उन सज्जन को कनिका बहुत ग्रच्छी लगती है, यह बात नहीं है, थोड़ा-सा स्नेह, थोड़ी-सी श्रद्धा मिलाकर एक जटिल मनोभाव है।"

ये सब बातें उसके साथी के कानों में पहुंचीं या नहीं, इसमें सन्देह है। कुछ देर एकाग्र होकर बैठे रहने के बाद उसका मद्धिम स्वर फिर सुनाई दिया, "मेरे ग्रागे दोनों हाथ जोड़कर क्या बोली कना, जानते हो। एक ही बात बार-बार बोल रही थी—तुम्हारे जीवन में मेरी तरह बहुत-सी लड़कियां आएंगी ज्योति दा, लेकिन उनका मुझे छोड़कर कोई नहीं है···"

इसके बाद मित्र ने पूछा, "तुम तो ग्राजकल दानापुर में हो। कलकत्ता ऐसे ही ग्रा गए या कोई खबर पाकर ?"

"कना ने ही मुझे टेलीग्राम दिया था।"

"टेलीग्राम दिया था। किसलिए ? ऐसे ही आ जाने के लिए ?"

"हां, ग्रौर मैंने सोचा था कि हम लोगों की उस दिन जो बात हुई थी कि कुछ दिनों बाद हमलोग घर बसा लेंगे, यह शायद उसीका बुलावा है।"

"और कोई बात नहीं हुई ?" कुछ देर बाद मित्र घड़ी की ओर देखकर बोला, "चलो, अब उठें। गाड़ी का समय हो गया है। अपने मन को मज़बूत रक्खो। धीरे-धीरे सब ठीक हो जाएगा। टाइम इज़ द बेस्ट हीलर।"

दोनों युवकों के चले जाने के बाद भी गुप्ता साहब उसी बेंच के कोने में वैसे ही बैठे रहे। ऐसा लगा जैसे कोई उनके दोनों पैर अचल कर गया हो।

बहुत देर बाद वे घर लौटे। उन्होंने देखा कि धुर्जटि, निशिकान्त सभी अत्यन्त व्याकुल हो उठे हैं। मलिना शोभन के घर चली गई थी।

धुर्जटि उनके शरीर की अवस्था के सम्बन्ध में शिकायत के स्वर में कुछ कहने ही जा रहा था कि बीच में ही वे बोल उठे, "हम लोगों के जाने की तारीख तो परसों है न ?"

दूसरे दिन आठ बजते ही गुप्ता साहब निकल पड़े। कई जगह घूमे। रात के समय ड्राइवर अकेला लौट आया। धुर्जटि नीचे ही था। उसके हाथ में एक सील किया हुआ मोटा लिफाफा देकर और कुछ पूछने से पहले ही वह अपने कमरे की ओर चला गया। लिफाफे पर अपना नाम देखकर धुर्जटि ने जल्दी से लिफाफे को एक किनारे से खोला। उसके भीतर एक लम्बी चिट्ठी और उसके साथ एक छोटा लिफाफा था, उसके मुंह पर भी चमड़ी की छाप थी। उसने चिट्ठी एक सांस में पढ़ डाली। इसके बाद ड्राइवर के कमरे की ओर दौड़ पड़ा। वह खटिया पर सो रहा था। जगाने पर उठ बैठा। उसकी दोनों आंखें लाल थीं। धुर्जटि ने पूछा, "गाड़ी छूट गई ?"

"कभी की। साहब के खिड़की से लिफाफा मेरे हाथ में देते ही गार्ड ने सीटी बजा दी। चढ़कर उनके चरण छूता, इसका समय भी नहीं मिला।" कहकर उसने अपनी आंखें पोंछीं।

"और कुछ नहीं बोले ?"

"ये इक्कीस रुपये के नोट देकर बोले, 'यह तुम्हारी बख्शीश है। महीने का जो बाकी है, वह धुर्जटि बाबू देंगे। तुम कहीं और काम खोज

लो। मैंने पूछा, आप कब लौटेंगे, सर? बोले, 'कोई निश्चित नहीं है। नहीं भी लौट सकता हूं।' एक सर्टिफिकेट भी दे गए हैं। बोले, 'इसे दिखाने से तुम्हें काम मिलने में सुविधा हो सकती है।'

पाकेट से एक और सादा लिफाफा निकाला ड्राइवर ने। धुर्जटि ने कुछ देर चुप रहकर प्रश्न किया, "कहां जा रहे हैं, इसके बारे में कुछ बताया?"

"नहीं तो, कहां तो जाने की बात थी, आप नहीं जानते?"

धुर्जटि ने कोई जवाब नहीं दिया। ड्राइवर को वह सब बताना व्यर्थ था। ऐसे ही उस बेचारे का दिल टूट गया था। और फिर उसे इस समय बहुत कुछ करना था। उसपर बहुत ही अप्रिय और कठिन कर्तव्य का भार आ पड़ा था। एक-एक करके निःसंकोच करते जाना होगा। उसके पास भी मन नामक कोई चीज़ है, जो पत्थर से तैयार नहीं हुई है, उसमें भी चोट लगती है, यह बात शायद किसीको ख्याल नहीं रहती। वह सिर्फ काम करता जाएगा—दस लोगों के दस तरह के काम। मशीन की तरह, जिसमें शक्ति तो है, लेकिन हृदय नहीं।

लेकिन मशीन भी तो थक जाती है। कुछ ही क्षणों में कहीं से ढेर सारी गम्भीर समस्याओं ने आकर उसे कमजोर कर दिया। लेकिन तुरत कठिन कर्तव्य-बोध ने उसे धकेलकर वापस खड़ा कर दिया।

बाहर के कमरे में बैठकर एक बार और चिट्ठी पढ़ी धुर्जटि ने। वर्तमान और निकट भविष्य में उसे क्या-क्या करना पड़ेगा, इसीकी लम्बी तालिका थी। इसे वसीयतनामा तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन जिस तरह वसीयतनामा व्यक्ति की मृत्यु के बाद उसके निर्देश का काम करता है उसी प्रकार यह भी गुप्ता साहब की सब चल-अचल सम्पत्ति की कागजी व्यवस्था थी। लेकिन इस वसीयतनामे के आदेशों का पालन उनकी जीवित अवस्था में ही करना पड़ेगा। इसके द्वारा जैसे वे यही बात कह गए हैं कि आज से मैं तुम लोगों के लिए मर चुका हूं।

एक विशेष लक्ष्य की सिद्धि की शर्त पर मकान रामकृष्ण मिशन को दे गए थे। जिसका कोई नहीं है, अथवा होते हुए भी अपना नहीं है; जिस किसी कारण से भी हो जिसे संसार में आश्रय नहीं मिला, पत्नी-पुत्र, सगे-

सम्बन्धी खिलाफ हो गए हैं; जो किसी समय योग्य थे लेकिन अब असमर्थ हैं; असहाय, शरीफ, प्रौढ़ और वृद्ध मनुष्य जिनकी भी इच्छा होगी उन्हें यहां स-सम्मान आश्रय मिलेगा। आवेदन-पत्र पर विचार करते समय और उसके सम्बन्ध में जानकारी संग्रह करते समय सम्पूर्ण गोपनीयता की रक्षा की जाएगी। यहां के कर्मचारियों की बातचीत या व्यवहार से ज़रा भी इस बात का संकेत न मिले कि यह अनाथ सदन या खैराती निवास है। जो व्यक्ति काम करने के इच्छुक और योग्य हों, उनके लायक काम की व्यवस्था भी रहेगी।

मिशन की सहमति से जो दस्तावेज़ तैयार हुआ था, उसकी एक नकल भी चिट्ठी के साथ थी। एक बोर्ड का गठन किया गया था जिसमें डोनर या दाता की ओर से धुर्जटि एकमात्र मेम्बर था।

दस्तावेज़ पढ़ते-पढ़ते उसकी आंखों के सामने डिक्सन कम्पनी के असिस्टेण्ट एकाउंटेंट निकुंज बाबू का सूखा चेहरा तैर आया। कुछ दिनों पहले यहीं पर इसी बैठक में उनसे मुलाकात हुई थी। इसी कुर्सी पर सिकुड़-कर बैठे थे। वे सज्जन करीब दो वर्ष पहले रिटायर हुए थे। दो लड़के और एक लड़की है। लड़की सबसे छोटी है। पूरे जीवन में जो कुछ जमा किया था, प्रायः समूचा ही लड़कों के पीछे व्यय कर दिया था, लड़की की शादी के प्रबन्ध जितना भी पास नहीं रखा। फलस्वरूप दोनों लड़के बहुत अच्छी तरह अपने पैरों पर खड़े हो गए थे। दोनों को बहुत अच्छी नौकरी मिली थी। यह सब कुछ गुप्ता साहब ने सुना था। उस दिन निकुंज बाबू की बातें सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ। वे कहीं पार्ट टाइम नौकरी के लिए अपने पुराने मालिक की सिफारिश की प्रत्याशा से आए थे। इसका कारण भी बता दिया था। गुप्ता साहब के प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा था, "बड़ा लड़का अब तक कुछ-कुछ देता था लेकिन अब और नहीं देता। गाड़ी, ज़्यादा मकान-भाड़ा, बावर्ची, बेयरा, नौकरानी, नौकर, आया, ड्राइवर इत्यादि ढेर सारे लोग पाल रखे हैं, उनकी तनख्वाह देता है, इन दिनों फिर एक पचास हज़ार की पालिसी ली है, उसका प्रीमियम देना पड़ता है। उसके खुद के अभाव की ही पूर्ति नहीं होती।"

"और छोटा ?" जानना चाहा हिमांशु ने।

निकुंज बाबू के चेहरे पर एक दुःख की छाया घिर आई। जैसे उन्हें बाध्य होकर बोलना पड़ रहा है, ऐसे भाव से बोले, "वह बोलता है, उसे अपनी चेष्टा से मेरिट पर नौकरी मिली है, मैंने तो उसके लिए कुछ किया नहीं।"

गुप्ता साहब ज़रा क्रोध के स्वर में बोले थे, "इससे क्या हुआ ? नौकरी तो सभी को अपनी चेष्टा और मेरिट पर ही मिलती है। नौकरी कोई लड्डू तो नहीं है कि बाप बुलाकर उसके हाथों में दे देगा। लेकिन वह मेरिट उसे मिली कहां से···किसके आश्रय और सहयोग के बल पर ?"

इसका उत्तर भी उसने दिया था, "लड़के को शुरू में जो बाप के ऊपर निर्भर रहना पड़ता है, जिसका नाम है इनीसियल डिपेण्डेन्स, वह लड़के का जन्मगत अधिकार है। इसके एवज़ में बाप उससे किसी रिटर्न या कृतज्ञता का दावा नहीं कर सकता।"

"बाप के प्रति उसका कोई कर्तव्य नहीं है ?"

"नहीं, उसका जो कुछ कर्तव्य है, वह अपने परिवार अर्थात् पत्नी और बच्चों के प्रति है।"

"क्या उसने शादी कर ली है ?"

"नहीं, भविष्यत् परिवार। उसके लिए अभी से तैयारी कर रहा है।"

"आप किस तरह चला रहे हैं ?"

"लड़की को बी० ए० तक पढ़ाया है। वह एक स्कूल में मास्टरी करती है और उसके साथ घर का काम भी करना पड़ता है। उसकी मां तो प्रायः अपंग है।"

करीब महीने-भर बाद गुप्ता साहब ने उस लड़की को एक अच्छी नौकरी दिला दी थी। इसी प्रसंग में धुर्जटि से एक दिन बोले थे, "हम लोगों के समय में लड़के सबसे पहले अपने बूढ़े मां-बाप का ध्यान रखते थे। लड़की पराए घर चली जाती थी। लेकिन तुम लोगों के समय में सब उलटा हो गया है। अभी लड़कियां जीवन-भर अविवाहित रहकर, मां-बाप और भाई-बहनों की मांगें पूरी करती हैं और उपयुक्त लड़का मिलने पर भी शादी न करके अपने को 'भाग्यवान' समझती हैं।"

बैठकखाने में उस दिन एक आदमी और उपस्थित था—अतनु। शुरू

में उसके साथ ही बातचीत चल रही थी। वह भी नौकरी की उम्मीद लेकर आया था। गुप्ता साहब कवि को पहचानते थे। मृदु हंसकर बोले थे, "तुम तो लेखक हो। नौकरी क्यों करना चाहते हो?"

"लिखने से कुछ नहीं होता। कविता की किताब कोई नहीं खरीदता। उपन्यास फिर भी कुछ बिक जाते हैं। लेकिन क्या लेकर उपन्यास लिखूं? हम लोगों के बंधे-बंधाए जीवन में प्लाट की बहुत कमी है। इसलिए सोच रहा था कि यदि एक नौकरी मिल जाए तो कुछ रुपये जमा करके अण्डमान, आराकान या आसाम फ्रंटियर में चला जाऊं।"

"वहां क्या है?"

"वहां के जो आदिम मनुष्य हैं उनके जीवन में आज भी प्राणों का स्पन्दन है। अभी भी वे ताज़ा, मुक्त और अकृत्रिम हैं। उनके जीवन से कुछ माल-मसाला ला सकूं तो एक अनूठा उपन्यास लिखा जा सकता है। उसमें उनकी आंचलिक भाषा का प्रयोग भी कर सकूंगा।"

"तुम्हारे बंगला देश के पाठक यह कैसे समझेंगे?"

"न समझें, इसमें लेखक की विद्या और निष्ठा का जो परिचय मिलेगा, वे उसीमें खुश होंगे।"

ऐसे समय में निकुंज बाबू के आ जाने से अतनु की बातों में बाधा पड़ गई थी। उनके चले जाने के बाद हिमांशु बहुत देर तक स्तब्ध-से बैठे रहे। उसके बाद कवि से थोड़ी-बहुत बातें कहकर ही उठकर चले गए थे। उनकी बातों में पहले की तरह उस हल्के स्वर का कण मात्र भी नहीं था। बोले थे, "तुम उपन्यास का प्लाट खोजने अण्डमान या कहीं जाओगे, यही कह रहे थे ना? इसकी कोई ज़रूरत नहीं है। बंगाल में, विशेषकर जिन्हें हम मध्यम या निम्न श्रेणी के लोग कहते हैं, उनके जीवन में ही तुम्हें इसका बहुत अधिक मूल तत्त्व मिल जाएगा। यदि उदाहरण चाहते हो, तो यह जो आदमी अभी-अभी गया है, इससे ज़्यादा जीवन्त उदाहरण और कोई है क्या? यदि ट्रेजेडी लिखना चाहते हो तो कहां मिलेगा तुम्हें इससे मोर··· मोर ट्रेजिक कैरेक्टर? उपन्यास में तुम लोग विलेन का चित्रण करते हो। उसका भी ज्वलन्त उदाहरण हैं उसके ये दोनों लड़के। विशेषकर छोटा।— निकुंज हालदार एक-दो नहीं हैं, हम लोगों के घर-घर में बिखरे पड़े हैं

उनके बारे में कोई नहीं सोचता। तुम लोग भी उन्हें नहीं देख पा रहे हो।"

आज चिट्ठी एवं दस्तावेज़ पढ़ते समय, गम्भीर स्वर में बोली गई उस दिन की ये बातें उसके मन में फिर से जैसे नये रूप में गुंजन कर उठीं। लेकिन फिर चिट्ठी और दस्तावेज़ की शेष बातों में लौट आया धुर्जटि।

इस मकान से सटा हुआ तीन कमरे वाला और एक तल्ले का एक छोटा मकान हिमांशु ने किसी समय में खरीदा था, जो खाली पड़ा था। मलिना ने अपने 'शुभानन्द निलय' के आफिस के लिए उसके कमरे मांगे थे, लेकिन वे राज़ी नहीं हुए। उनके देश से दूर के रिश्ते के कोई आतमीय या पड़ोसी कभी-कभी हठात् उपस्थित हो जाते। इस मूल मकान में उनके रहने की व्यवस्था एक मुश्किल काम था। दोनों ओर असुविधा थी। इसलिए उनके रहने की व्यवस्था उसी छोटे मकान में होती। वह मकान वे मलिना को दे गए थे। वहां का स्नानघर एवं अन्य व्यवस्था भी पुराने एवं उसी ज़माने की तरह की थी। उन सबको यथासम्भव आधुनिक आकार देकर, जहां-जहां भी मरम्मत की ज़रूरत थी, जल्दी-जल्दी करवाकर, मकान को रहने योग्य बनवाने का भार धुर्जटि पर था। इस मकान के अलावा वे जीवन-भर दो सौ रुपये महीने का भोग करेंगी। गाड़ी लड़की के लिए छोड़ गए थे। वह यदि इतनी दूर न ले जाना चाहे तो उसे बिक्री करके उसकी रकम उसे भेज देनी पड़ेगी। पांच हज़ार रुपये का एक बीमा-पत्र था, प्रारं-भिक जीवन का किया हुआ। उसे लड़के के नाम हस्तान्तर कर गए। मकान के शेष सब सामान पर सम्पूर्ण अधिकार मलिना गुप्ता का था। वह अपनी इच्छानुसार उनका उपयोग कर सकती थी।

चिट्ठी के अन्त में एक छोटा-सा अनुरोध और था—"मेरी सबसे प्रिय वस्तु, एक कलम और एक सेट शेक्सपियर की ग्रन्थावली मैं तुम्हें दे जा रहा हूं। और कुछ देकर तुम्हारा अनादर नहीं करना चाहता। तुम्हारे पिताजी के नाम जो चिट्ठी है, वह उन्हें दे देना।"

वह चिट्ठी खुली हुई एवं संक्षिप्त थी। लिखा था, "बड़े भाई, अनि-वार्य कारणवश मुझे सब कुछ छोड़कर जाना पड़ रहा है। शायद अब आपसे

मिलना नहीं होगा। निकट सम्बन्ध का न होने पर भी मैं आपका चचेरा भाई हूं। इसी अधिकार स्वरूप एक छोटी-सी भेंट भेज रहा हूं। ग्रहण करने पर कृतज्ञ होऊंगा।"

चिट्ठी के साथ आलपिन से लगा दो हज़ार रुपये का चेक था।

चपड़ी लगाया हुआ लिफाफा कनिका की दादी को आज रात में ही पहुंचाया था। इस सम्बन्ध में विशेष निर्देष दिया हुआ था। चिट्ठी को पढ़कर धुर्जटि के माथे पर सिकुड़न की रेखाएं फूट पड़ीं। तो क्या कनिका भी नहीं जानती कि वे जा रहे हैं?

शोभन को रात में नौ बजे के बाद ज़रूर आने के लिए टेलीफोन करके धुर्जटि बेनियापुकुर की ओर निकल पड़ा। समय की बचत के लिए टैक्सी करनी पड़ी।

कनिका के घर के सामने पहुंचा तो देखा, वहां भी एक टैक्सी खड़ी थी। उतरते ही दिखाई पड़ा कि कनिका अपनी दादी को हाथों से पकड़कर पीछे की सीट पर बैठाने की चेष्टा कर रही है। धुर्जटि को देखते ही वह रुक गई। पहले शुष्क स्वर में पूछा, "क्या खबर है?" कुछ देर बाद सलज्ज हंसी फूट पड़ी। शायद उसे देरी होते देख धुर्जटि खुद दौड़कर उसे लेने आया है। धुर्जटि के आगे बढ़कर दादी के चरण स्पर्श करते ही उन्होंने उसके सिर पर हाथ फेरकर कहा, "हम लोग तो तुम्हारे यहां ही जा रहे थे। खबर अच्छी है तो?"

"भीतर चलिए, बताता हूं। अच्छा, मैं टैक्सी छोड़कर आ रहा हूं, आप लोग अन्दर चलिए।"

दोनों की आंखों में और चेहरे पर शंका की छाया फूट पड़ी। दादी थर-थर कांपने लगीं। किसी तरह आवाज़ निकली, "क्या हुआ धुर्जटि?"

"चाचा जी किसीसे बिना कुछ बोले चले गए।"

"कहां?"

"यह नहीं जानता।"

धुर्जटि हाथ पकड़कर वृद्धा को बरामदे में ले आया। कनिका ने यन्त्र-चालित की तरह उनका अनुसरण किया। वे चौकी पर धप से बैठ गए। धुर्जटि ने लिफाफा उनके आगे बढ़ाया तो बोलीं, "किसकी चिट्ठी है?"

"ग्रापकी ?"

"मुझे क्या दिखाई देता है ? तुम ही पढ़ो ।"

तब भी वह इधर-उधर करने लगा, फिर कनिका की ग्रोर देखा तो वह बोली, "पढ़िए ना !"

कुछेक लाइनों की चिट्ठी थी। धुर्जटि धीरे-धीरे पढ़ता गया—

" चरण स्पर्श,

" मैं यहां से जा रहा हूं। कब लौटूंगा, नहीं जानता। लौटूंगा या नहीं, यह भी निश्चित नहीं है। ग्रापसे एक विशेष अनुरोध है। जितनी जल्दी सम्भव हो सके दानापुर के उसी लड़के के साथ (शायद नाम ज्योति है) कनिका की शादी की व्यवस्था कर दें। इस बारे में विचार स्थिर रखें ग्रौर यह खबर उन्हें अविलम्ब भेज दी जाए।

" मैं ग्राप लोगों का सम्बन्धी न होने पर भी कनिका का एक अभिभावक ग्रौर शुभचिन्तक हूं। उसी अधिकार से उसकी शादी के दहेज ग्रौर ग्रन्यान्य खर्चे के लिए सामान्य-सी रकम ग्रापके पास भेज रहा हूं। कृपा करके ग्रहण करें तो मुझे सन्तोष मिलेगा। ग्राशा करता हूं, इस बारे में कोई दुविधा नहीं करेंगी।

" शादी के दिन नव दम्पती को मेरा स्नेह और आशीर्वाद कह दीजिएगा। इति।

हिमांशु कुमार गुप्त "

चिट्ठी की तह के बीच में पांच हज़ार रुपये के नोट लगे हुए थे।

कनिका धुर्जटि के पीछे खड़ी थी। चिट्ठी खत्म होते ही उसने घूमकर देखा, वहां कोई नहीं था एवं बगल के कमरे का दरवाज़ा बन्द था।

ठीक सामने मूर्ति की तरह निश्चल दादी बैठी थीं। उनकी दोनों ग्रांखों से मोटी-मोटी ग्रश्रुधारा बह रही थी। बहुत देर बाद उन्होंने एक लम्बी सांस ली और उसीके साथ जैसे ज्ञान लौट आया। धुर्जटि ने नोटों समेत चिट्ठी ग्रागे बढ़ा दी। उन्होंने उसे दोनों हाथों से लेकर ग्रपने माथे से लगाया बोलीं, "दो बेटा, हालांकि जानती हूं कि यह सिर्फ उनकी दया है, फिर भी यह दान ग्रस्वीकार करने लायक मेरी हिम्मत नहीं है। यदि तुमसे मुलाकात हो तो कहना कि उनका आशीर्वाद हम लोगों ने माथे से लगा लिया है।"

धुर्जटि को ज़्यादा ठहरने लायक फुर्सत नहीं थी। जो दायित्व उसके सिर पर आ पड़ा था, इतनी देर में सिर्फ उसका एक अंश उतार सका था। अभी भी बहुत कठिन बोझ ढोना बाकी था। अब तक शोभन आकर बैठा होगा। उसे सब कुछ बताकर उसीके साथ चाची जी के पास जाना था। जाते समय कनिका से मुलाकात नहीं हुई। अभी मिलने का समय भी नहीं था। दादी ने भी यही कहा कि आज रहने दो, उसके मन की अवस्था तो समझ ही रहे हो।

धुर्जटि के घर पहुंचते ही शोभन उबल पड़ा, "झाड़ू मारो तुम्हारी इस ट्यूशन के धन्धे को।"

"मेरा अपराध ?"

"अपराध यह है कि मुझे बैठे-बैठे पूरी एक पैकेट सिगरेट फूंकनी पड़ी है। याद रखकर सिगरेट के पैसे दे देना।"

"ट्यूशन के पल्ले पड़ा हूं,। सोचता हूं, टीचरी रहने से अच्छा रहेगा।"

"जिस दिन ऐसा सुनूंगा, उस दिन मैं नकद पांच चवन्नी का प्रसाद चढ़ाऊंगा। लेकिन पैसे तुम्हें देने पड़ेंगे।"

"पैसे मैं दे दूंगा। उसके बदले तुम मुझे अभी एक परामर्श दो तो ठीक रहे।"

"मैं परामर्श दूं, तुम्हें। क्या बात है, बताओ, दोस्त ?"

"यह लो, पहले ज़रा इसे पढ़ लो। उसके बाद बताता हूं।"

"क्या है यह !"

"पढ़ने से ही समझ जाओगे।"

गुप्ता साहब की दस्तावेज़ और चिट्ठी पढ़ते-पढ़ते शोभन के चेहरे के भाव क्रमशः गम्भीर होते गए। चिट्ठी पढ़ चुकने के बाद भी कुछ देर तक चुप रहा। उसके बाद, धुर्जटि ने लक्ष्य किया कि होंठों के बीच हंसी की टेढ़ी रेखाएं लौट आई हैं। शोभन बोला, "इसीलिए तो कहता हूं, आल आईडियालिस्ट्स आर फूल्स। इस काण्ड का कोई मतलब नहीं हैं ?··· जो हो, मैं अब चलता हूं।"

उसके उठते ही धुर्जटि ने उसे रोका, "ठहरो, मैं भी तुम्हारे साथ जाऊंगा।"

"तुम कहां जाओगे ?"

"तुम्हारे घर।"

"क्यों ?"

"उन्हें बताना नहीं पड़ेगा ?"

"इसके लिए इतना कष्ट करने की ज़रूरत नहीं है। वे ऊपर ही हैं।"

"ऊपर हैं ?"

"और कितने दिन मेरे जैसे गरीब मनुष्य के घर रहेंगी ?"

"अच्छा ही हुआ। चलो, अभी इस काम को निबटा लिया जाए।"

"लेकिन मैं भला क्यों जाऊंगा ?"

"ऐसे ही चलो ना ?"

"नो ब्रदर।" ज़रा नाटकीय ढंग से बोला शोभन, "शोभन दत्त 'ऐसे ही' कोई काम नहीं करता। मलिना गुप्ता के पास जाने की मेरी ज़रूरत खत्म हो गई है।"

"क्यों ?"

"क्यों, यह समझ नहीं सके ? तुम तो जानते हो दोस्त, वाई नेचर एण्ड प्रोफेसन, मैं मुसाहिब हूं। मेरा कारबार दमदार लोगों के साथ है। मलिना गुप्ता तो अब खाली हैं, जिस तरह कि एक रंग-बिरंगा बैलून हवा निकल जाने से होता है, उसी तरह। उसे लेकर मैं क्या करूंगा ? अब मुझे नये बैलून की खोज में निकलना पड़ेगा।"

अभिनय के स्वर में यह सब कहकर हंसने की चेष्टा की शोभन दत्त ने लेकिन हंसी जैसे ठीक निकली नहीं।

८

हिमांशु सबसे पहले काशी उतरे। बहुत वर्ष पहले जब वे यहां आए थे तो पुल पर से दिखाई देते गंगा के अर्धचन्द्राकार प्रवाह एवं उसे घेरे हुए आसपास के घाटों ने उन्हें विशेष आकर्षित किया था। जितने दिन वे रहे, रोज़ उनके दिमाग में एक अद्भुत कल्पना सवार रहती। रोज़ किसी डाउन ट्रेन से आगेवाले स्टेशन तक जाते और नौका द्वारा लौटते समय नदी के हृदय पर असंख्य मन्दिरों के शिखरों एवं बहुविस्तृत सीढ़ियों के ऊपरी हिस्सों पर विचित्र रोशनी देखते।

लेकिन इस बार उन्हें इतना अच्छा नहीं लगा। सभी कुछ पहले जैसा ही था। लेकिन वे दोनों आंखें और उन दिनों वाला मन पहले जैसा नहीं था। अच्छा नहीं लगा, सिर्फ यही नहीं, बल्कि इस सुनसान जगह से वे दो दिन में ही थक-से गए। जो सुनसान शान्त जगह मनुष्य को शान्ति प्रदान करती है, उसीमें उन्हें भीतर ही भीतर व्याकुलता का अनुभव होने लगा।

वे जिस होटल में ठहरे थे, बातों ही बातों में वहां के एक यात्री को अपनी इच्छा का ज़रा-सा संकेत देते ही उसने 'डेहरी-आन-सोन' का नाम लिया और बताया कि नदी के ठीक तट पर उसके किसी रिश्तेदार का मकान है, यदि वह कह दे तो उन्हें भाड़े में सुविधा से मिल सकता है। उसके बाद कुछ दिनों तक यात्री और उसके रिश्तेदार में चिट्ठी-पत्री का आदान-प्रदान चला। अन्त में काशी में बैठे ही डेहरी में रहने की व्यवस्था हो गई। वहां कोई होटल नहीं था। इसी आदमी ने प्रयत्न करके एक रसोइये का इन्तज़ाम कर दिया और आश्वासन दिया कि वहां 'नौकर' नामक वस्तु दुर्लभ नहीं है।

'घर' क्या था, किसी तरह पड़े रहने लायक एक खपरैल की झोंपड़ी

थी। खिड़कीहीन मिट्टी की दीवारें, दरवाज़ा भी इस तरह बनाया हुआ कि अपने को थोड़ा-सा झुकाकर एवं दोनों ओर से सिमटकर किसी तरह आ-जा सकते थे।

वहां के स्थानीय मकान-मालिक के प्रतिनिधि से यह पूछने पर कि दोनों ओर दो खिड़कियां लगा देने से क्या हानि होती, वह हंसते-हंसते बेहाल हो गया और बोला, "तब फिर घर में न रहकर मैदान में रहना ज़्यादा अच्छा है।"

परम सौभाग्य की बात है कि सामने नदी की ओर एक खुला बरामदा था। यहां ईज़ी चेयर या कैम्प-चेयर का होना कल्पना के बाहर की चीज़ थी। एक बरामदे के लिए और एक कमरे में सोने के लिए रस्सी की दो खाटों का इन्तज़ाम किया गया। पहली दिन में और दूसरी रात में आश्रय के लिए। भीतर एक रसोईघर था और आंगन में एक छोटा कुआं था। उसीके किनारे नहाने की व्यवस्था थी। इन्हीं सामान्य-से साधन, रसोइया और तुरन्त लगाए गए एक 'नौकर' का अवलम्बन लेकर नये रूप से जीवन शुरू किया डिक्सन कम्पनी के जनरल मैनेजर हिमांशु गुप्ता ने। उन्हें जितनी असुविधा की आशंका थी असल में उससे आधी भी महसूस नहीं हुई। जो बातें उन्होंने आज तक सुनी थीं, उन्हीं का प्रत्यक्ष अनुभव किया। सुख-दुःख, सुविधा-असुविधा, सब मन की चीज़ें हैं। मन यदि अनुकूल हो तो बहुत थोड़े में स्वच्छन्दता और सुख का अनुभव होता है और जहां मन का समर्थन नहीं है, वहां सब चीज़ों की प्रचुरता होने पर भी कमी महसूस होती रहती है।

बरामदे के सामने एक पगडण्डी थी, उसके बाद जहां तक दृष्टि जाती थी, खुली एवं अबाध सोन नदी का विस्तृत मैदान दिखाई पड़ता था। रसोइये के हाथों बनाई हुई एक मोटी रोटी और उसके साथ थोड़ा-सा गुड़ और एक लोटा पानी से सुबह का नाश्ता करके गुप्ता साहब घूमने निकलते थे। धूप निकलते ही लौट आते। उतनी देर में खाया-पीया सब हजम हो जाता। तब रसोइया एक कटोरी दूध लेकर हाज़िर हो जाता। बिना पिलाए नहीं मानता और लगातार ज़िद करता जाता; बोलता, "आपनी कुछु डर कोरबेन ना, बाबूजी। डिहरी का हवा-पानी बहुत भालो

आछे। खेये लीन।"

ऐसे समय में कभी-कभी आंखों के सामने दो दृश्य तैर आते—पहला, बहुत दिनों का विस्मृतप्राय दौलतपुर कालेज के साथ का छोटा-सा घर और दूसरा कुछ दिनों पहले छोड़ आए कलकत्ते की इमारत की रोग-शय्या का। उसीके साथ दो मूर्तियां सामने आकर खड़ी हो जातीं और थोड़ा-सा खाने के लिए दबाव डालने लगतीं; वे दोनों ही नारियां हैं। लेकिन एक में कितना अपनापन है और दूसरी में कितना परायापन।

एक दिन गुप्ता साहब के बरामदे के सामने से किसी पर्व के उपलक्ष्य में सुबह से स्त्री-पुरुष और लड़के-लड़कियों का जुलूस जा रहा था। इन लोगों को कलकत्ते या काशी में देखने से मन परेशान हो उठता, लेकिन यहां बहुत अच्छा लग रहा था। "कहां जा रहे हैं ये लोग?" पूछने पर नौकर ने बताया कि कुछ ही दूर एक मन्दिर है, वहीं जा रहे हैं। उनकी भी देखने की इच्छा हुई, इसलिए एक छड़ी लेकर उनके बीच मिल गए।

मन्दिर के सामने बहुत-से लोगों का जमघट था। गुप्ता साहब कुछ देर खड़े रहकर वापस लौटने वाले थे कि उन्हें लगा, भीड़ को चीरती हुई एक लड़की उनकी ओर बढ़ रही है। चेहरे और पोशाक से बंगाली विधवा लग रही थी। उम्र तीस के आसपास थी। उन्हें आश्चर्य हुआ। इन कुछ दिनों में बंगाल की औरत की बात तो दूर रही, एक पुरुष भी उनकी आंखों में नहीं पड़ा। इतनी ही देर में वह उनके पास पहुंच गई और एक बार सूक्ष्म दृष्टि से उन्हें सिर से पैर तक देखने के बाद संदिग्ध स्वर में बोली, 'हिमांशु मामा?"

"आप मुझे पहचानती हैं?"

"ओह मां, वही तो हैं।" खुशी से लगभग चीख उठी औरत, "चेहरा बहुत बदल गया है, लेकिन आवाज़ वैसी ही है।"

आगे बढ़कर चरण स्पर्श करके बोली, "आप यहां क्या कर रहे हैं? कहां ठहरे हैं? मामी कैसी हैं और क्या नाम है लड़के का—हिरन—वह आजकल क्या कर रहा है? मामी के कितने लड़के-लड़कियां हैं?"

हिमांशु हंस पड़े, "ठहरो, तुम्हारे इतने सारे प्रश्नों का एक साथ तो उत्तर नहीं दिया जा सकता, एक-एक करके देता हूं। लेकिन पहले मैं यह

कहना चाहता हूं कि अभी तक मैं तुम्हें पहचान नहीं सका हूं।"

"कैसे पहचानेंगे?" बात ज़रा अतिरिक्त ज़ोर से निकल जाने पर वह शायद झेंप गई। फिर आवाज़ धीरे करके बोली, "किसी दिन आपके सामने गई थी क्या? बाप रे, कितने गम्भीर थे और क्या ही आवाज़ थी। सुनते ही हृदय धक्-धक् करने लगता। लेकिन ओट से आपको देखती और बातें सुनती रहती थी। जब मामा के घर के बरामदे में बैठकर आप शैली का 'स्काईलार्क' या कीट्स की 'नाईटिंगेल' पढ़ते तो कितना अच्छा लगता था।"

"अच्छा, ठहरो, क्या तुम पुलिस बाबू की भतीजी हो? नाम ठीक याद नहीं आ रहा है।"

"माधवी। कैसे पहचाना, बताइए तो?"

"वाह, दौलतपुर में तुम्हारे मामा के घर क्या तुम्हें नहीं देखा? कलकत्ते में किसी स्कूल या कालेज में तो पढ़ती थी।"

"ओह मां, देखती हूं, आपको तो स-ब याद है। इस्, क्या यह आज की बात है!"

दूर स्मृति के भार से दोनों आंखें ज़रा-सी गीली हो गईं। वह भाव निकालकर हठात् बोल उठी माधवी, "आप अपने बारे में बताइए। आप तो ब-हु-त बड़ी नौकरी करते हैं। कलकत्ते में। यहां कैसे आना हुआ?"

"बहुत बड़ी नौकरी? हो सकता है, लेकिन कभी करता था, अब नहीं करता।"

"रिटायर हो गए क्या? इतनी जल्दी। यहां शायद चेंज के लिए आए हैं। कहां ठहरे हैं?"

"चलो, ज़रा छाया में चलकर खड़ा हुआ जाए। धूप बहुत तेज़ है।"

"मेरे घर चलिए न।"

"अच्छा, चलो। तुम यहां कहां, किस तरह···" उसकी सादी मांग की ओर देखकर बात अधूरी छोड़ दी।

माधवी के चेहरे पर एक करुण छाया उभर आई। दबी आवाज़ में बोली, "मेरा परिचय तो देखकर ही समझ सकते हैं। वे यहां रेल की कैण्ट्राक्टरी लेकर आए थे। जगह अच्छी लगी इसलिए एक मकान बना

लिया। लेकिन मेरा भाग्य खराव है। आज प्राय: दो वर्ष हो गए, कालरा में···। एक पांच वर्ष का लड़का ही मेरा सहारा है। और कोई नहीं है। सास-ससुर बहुत दिन पहले ही गुज़र गए थे। देवर, जेठ जो हैं, सब अपने-अपने परिवार में मग्न हैं। कोई मुझे आश्रय नहीं देना चाहता, यह वात नहीं है। मैं ही नहीं जाती हूं। यहां लड़के-लड़कियों का एक प्राइमरी स्कूल है, वहीं मास्टरी करती हूं। और मकान है। सस्ती जगह है। उसीमें किसी तरह चल जाता है।"

मकान देखकर हिमांशु के मुग्ध कंठ से अपने-आप निकल गया, "वाह !" बड़े-बड़े तीन कमरे थे। एक में मां-बेटा सोते हैं, सामने वाला बैठने के लिए है और उसके पास वाला खाली पड़ा है। थोड़ा सामान था, लेकिन वहुत ही सुन्दर ढंग से सजाया हुआ। उन्हें वहां की प्रत्येक चीज़ में सुरुचि और सुन्दरता का परिचय मिला। मकान के सामने फूलों का वगीचा था और पीछे साग-सब्ज़ियों का खेत। बरामदा मनोरम था। वहां खड़े होने से सोन नदी का एक विस्तीर्ण रेतीला टापू दिखाई देता था। थोड़ी-सी दूर पर ही भारत का दीर्घतम रेल का पुल था। जब वे बरामदे में पहुंचे, उसी समय वहां से एक गाड़ी गुज़र रही थी। एक मनोहारी चित्र-सा था वह मकान।

हिमांशु अकेले हैं, यह जानकर माधवी ने ज़िद पकड़ ली कि दोपहर का खाना खाकर जाना पड़ेगा।

"मुझे कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन मेरा रसोइया बिना खाए बैठा रहेगा।"

"मैं खबर भिजवा देती हूं।"

"किसके द्वारा खबर भेजोगी ?"

"माली द्वारा। वह यहीं का रहनेवाला है। सब कुछ जानता है।"

बैठने के कमरे में पहुंचकर हिमांशु बोले, "कहां है, अपने लड़के को बुलाओ ? उसके साथ कुछ बातें करूं।"

"सामने आने पर ही तो बातें करेंगे। आपको आते देखकर दाई के कमरे में जा घुसा है। मेरा ही लड़का है ना।"

"उसका दोष नहीं है। पूरा शिशु राज्य ही मेरी पहुंच के वाहर रह

गया। रहने दो, उसे आज तंग नहीं करूंगा। इसके बाद जिस दिन आऊंगा, उस दिन धीरे-धीरे आगे बढ़ूंगा।"

दिन ढलते ही गुप्ता साहब जाने लगे तो माधवी भी उन्हें छोड़ने के लिए कुछ दूर तक साथ गई। रास्ते में बोली, "चलिए, आपका घर देख आऊं।"

वहां पहुंचते-पहुंचते प्रायः रात हो गई। मकान का रूप और एक बार कमरे में झांककर बोली माधवी, "यह कहां आ गए? आप यहां रहते हैं?"

"क्यों? तुम्हें शायद अच्छा नहीं लगा?" कहकर मृदु-मृदु हंसने लगे हिमांशु।

माधवी उनकी बात का उत्तर दिए बिना ही चिल्ला उठी, "माली।"

"माई जी।"

"कमरे में जाकर बाबू का बिस्तर बांध डालो। और···अच्छा ठहरो, सूटकेस मैं सजा देती हूं।"

गुप्ता साहब बाहर खटिया पर बैठे थे। जल्दी से उठते हुए बोले, "बिस्तर बांधने की क्या ज़रूरत आ पड़ी? तुम्हारा मतलब क्या है, बताओ तो?"

"बिना कुछ बोले आप सीधे मेरे साथ चलिए।"

हिमांशु हंस पड़े, "तुम गलती कर रही हो, माधवी। मैं यहां दो-चार दिन के लिए नहीं आया, बल्कि हमेशा रहने के लिए आया हूं।"

"हमेशा की बात बाद में होगी। फिलहाल आप मेरे यहां चलिए। यहां इस अवस्था में मैं आपको किसी भी कीमत पर छोड़कर नहीं जा सकती।"

हिमांशु गुप्ता की पूरी कहानी किसीको सुनाने की नहीं है। सुनाने पर भी कोई ठीक से समझेगा नहीं। और फिर, एक इतने बड़े सफल जीवन को बीच रास्ते में छोड़कर हठात् निकल भागने का पूरा कारण शायद वे खुद भी अभी तक नहीं समझ सके थे। माधवी ने कुछ भी जानना नहीं चाहा। स्त्री-जाति की जो विधिवत् अन्तर्दृष्टि है, उससे वह इतना ही समझ सकी थी कि बहुत दिन पहले जिस धीर और उदार मनुष्य के

स्वच्छन्द एवं सुखी परिवार की तस्वीर वह देख आई थी, उसमें निश्चित रूप से कहीं पर कोई दरार उत्पन्न हो गई है। उस आघात की आकृति का ज्ञान न होने पर भी तीव्रता का अनुभव आसानी से किया जा सकता था। लेकिन माधवी ने इस विषय में चुप रहना ही बेहतर समझा। फिर भी उसकी आंखों की पुतलियों में शायद कोई ऐसी चीज़ खिल उठी थी जिससे हिमांशु एकदम चुप नहीं रह सके। अपने सम्बन्ध में थोड़ा-सा इशारा करके दो बातों पर उन्होंने विशेष ज़ोर दिया···यह जगह उन्हें बहुत अच्छी लगी और कलकत्ता अब वे लौटना नहीं चाहते। हठात् माधवी की दोनों आंखें चमक उठीं। लेकिन जो मन में आया था उस समय बोल नहीं सकी।

कुछ देर घूमकर आने के बाद जब हिमांशु बैठे तो उसके भीतर की व्याकुलता को लक्ष्य करके उन्होंने कहा, "तुम कुछ कहना चाहती हो, माधवी ?"

"कह रही थी," जैसे उसका संकोच अभी तक खत्म नहीं हो सका था इस भाव से बोली माधवी, "आप मेरे पास क्यों नहीं रहते, मामा जी?"

"तुम्हारे पास ?" हिमांशु के उत्तर के लहजे में विस्मय का स्वर दबा नहीं रह सका।

"आपको कोई असुविधा नहीं होगी। मैं आपकी देखरेख करूंगी।··· और फिर मेरे सिर पर भी तो कोई नहीं है। एक बच्चे को लेकर इतनी दूर अकेली पड़ी हूं, मामा जी।"

उसकी बातें बहुत ही करुण लगीं और स्वर भी बहुत ही मर्मस्पर्शी। उसमें एक ऐसी निःसहाय प्रार्थना का भाव था जिसकी उपेक्षा करना कठिन था। हिमांशु ने तत्काल कोई जवाब नहीं दिया। कमरे के भीतर से भी नदी का तट दिखाई देता था। उसी दीर्घ रेगिस्तान की ओर उदास दृष्टि से देखते रहे।

दूसरे दिन सुबह ही माधवी के लड़के के साथ दोस्ती हो गई। बच्चा बड़ा अजीब जीव होता है। जब पकड़ाई में आता है तो बहुत ही सहज हो जाता है और जब नहीं आता तो कोई भी साधन उसे पास नहीं ला

सकता।

समय होते ही हिमांशु उसके साथ घूमने निकल पड़े। पैदल चलते-चलते वे शुष्क खुले विस्तीर्ण रेतीले टापू के बीच जा पहुंचे। कुछेक महीने पहले जब वे इस रास्ते से काशी गए थे तब यह नदी भरी हुई थी। आज चारों ओर सिर्फ बालू ही बालू दिखाई पड़ रही है और उसके बीच में एक शीर्ण जल-रेखा पड़ी हुई है। दोनों ओर के किनारों से कितनी दूर और कितनी विच्छिन्न। नदी और किनारे के फासले को देखकर हिमांशु सहसा चौंक पड़े। उन्हें लगा कि उनका जीवन इस नदी से कितना मिलता-जुलता है। उन्होंने भी आज इसी तरह अपना सब कुछ खो दिया है। जहां तक दृष्टि जाती है, सिर्फ बालू को छोड़कर और कुछ दिखाई नहीं देता।

लड़का बेरोक-टोक बके जा रहा था। उसकी कितनी ही बातें वे सुन रहे थे और कितनी ही सुने बिना ही 'हां, हूं' में जवाब देते जा रहे थे। हठात् उनके कानों में सुनाई पड़ा, "धूप लग रही है दादा, छाया में चलो ना।"

"छाया!" गुप्ता साहब फिर चौंक पड़े, "कहां है छाया?" लड़के ने अपनी छोटी अंगुलियों के इशारे से दिखाया। एक कटे-फटे ऊंचे कगार के नीचे ज़रा-सी शीतल छाया थी। और भी आश्चर्यजनक बात यह थी कि नदी भी टेढ़ी होकर उसके किनारे को छूती हुई आगे बढ़ गई थी। धूप से तपते लम्बे रास्ते के पास जैसे इतना-सा ही उसका विश्राम-स्थल था। वहां पहुंचते ही हिमांशु को हठात् माधवी का चेहरा याद आ गया। इतनी देर तक उसकी बात एक बार भी मन में नहीं आई थी।

घर लौटकर लड़के का हाथ उसकी मां के हाथ में पकड़ाकर बोले, "कुछ दिनों बाद तुम्हारा लड़का सुरेन बनर्जी का नाम डुबो देगा।"

"आगे मत बोलिए।" परेशानी के स्वर में बोली माधवी, "इसके कारण मैं तो एकदम परेशान हो गई हूं।"

फिर लड़के को डांटती हुई बोली, "शायद दादू को बहुत परेशान किया है, दुष्ट लड़के? ठीक है, आगे से वे कभी तुम्हें अपने साथ घुमाने नहीं ले जाएंगे।"

लड़के ने जैसे सुना ही नहीं, इस तरह बोला, "जानती हो मां, हम लोग ब-हु-त दूर घूमने गए थे। और दादा ने मुझे एक बहुत बड़े राक्षस की कहानी सुनाई थी। तुम तो सुना ही नहीं सकतीं।"

हिमांशु हंस पड़े, "इसका मतलब तुम डिस्मिस हो गई और उस जगह मेरी नौकरी पक्की हो गई।"

"तब तो मैं बच जाऊंगी।" खुशी के स्वर में बोली माधवी, "जाओ, जाकर हाथ-मुंह धो लो। आप ज़रा इस कमरे में आइए, मामा जी।"

"क्या बात है?" कहकर उसके पीछे-पीछे बैठक के कमरे में जाकर खड़े हो गए। इतनी देर में कमरे का रूप ही बदल गया था। खिड़की के किनारे एक नई नेवार की खाट, उसके सिरहाने एक छोटी टेबिल और उसके बगल में कुर्सी। टेबिल के ऊपर सूक्ष्म कढ़ाई का काम किया हुआ बहुत ही सुन्दर टेबिल-कवर बिछा था। सबसे पहले वही उनकी नज़र में पड़ा। कढ़ाई पर हाथ फेरते हुए प्रशंसा के स्वर में बोले, "बहुत सुन्दर। शायद तुमने किया है?"

उत्तर में माधवी के चेहरे पर एक मधुर लजीली हंसी फूट पड़ी।

टेबिल के बाईं ओर एक छोटे कांसे की तश्तरी में थोड़े-से पानी में भिगोए हुए शिउली फूल और दाहिनी ओर एक बंडल सादे कागज़ों का रखा था। प्रफुल्ल दृष्टि से एक बार कमरे को चारों ओर से देखकर, दो फूल हाथों में लेकर बोले हिमांशु, "ये कागज किसलिए? इनकी सीमा से तो पार हो आया हूं।"

"यह नई सीमा है।" हंसती हुई बोली माधवी। हिमांशु की प्रश्न-वाचक दृष्टि उठते ही फिर बोल पड़ी, "आपको लिखना पड़ेगा।"

"लिखना पड़ेगा? क्या लिखूंगा?"

"अपनी आत्म-कथा।"

"शायद तुम मज़ाक कर रही हो। लिखने लायक क्या है मेरे जीवन में?"

अब माधवी के चेहरे से हंसी लुप्त हो गई। दृढ़ एवं शान्त स्वर में जवाब दिया, "क्या नहीं है? प्रारम्भिक जीवन में साहित्य के आप अध्यापक थे—शैली, कीट्स, शेक्सपियर को लेकर दिन काटते थे। गांव में एक

छोटा-सा घर और साधारण परिवार था। उसके बाद एक दिन बड़े शहर से निमंत्रण आया। नये रास्ते पर अपनी मेहनत द्वारा एक-एक सीढ़ी चढ़ते-चढ़ते धीरे-धीरे एक इतनी बड़ी विदेशी संस्था की चोटी पर पहुंचे। दोनों हाथ भरकर यश, इज़्ज़त, धन मिला। लेकिन…"

माधवी हठात् रुक गई। हिमांशु चौंक पड़े। लगता था शायद ज़रा अनमने हो गए थे। अपने को सम्भालते हुए बोले, "बोलो।"

माधवी बोलने लगी, "लेकिन शायद कहीं पर कोई बड़ा फासला रह गया था जिसके फलस्वरूप एक दिन हठात् फिर सब कुछ छोड़-छाड़कर बहुत दूर एक देहाती गांव के मिट्टी के घर में लौट आए। क्यों, किसलिए मनुष्य के जीवन में इतने उतार-चढ़ाव आते रहते हैं? यही सब बातें आपको लिखनी पड़ेंगी।"

"इससे क्या लाभ होगा?"

"हम लोग जो इस दुनिया में बाद में आए हैं, वे इसे पढ़ेंगे, इससे कुछ सीखेंगे जिससे हम लोगों को सान्त्वना मिलेगी।"

इस प्रायः अपरिचिता, अनात्मीया औरत के चेहरे की ओर देखकर हिमांशु कुछ देर तक स्तब्ध-से खड़े रहे। उसके बाद बोले, "बहुत अच्छा, यही लिखूंगा। लेकिन तुमने जहां खत्म किया है, वहीं अन्त नहीं है। इसके बाद और भी बहुत कुछ है।"

माधवी शायद समझ नहीं सकी, इसलिए हिमांशु की ओर देखने लगी। वे खिड़की से बाहर की ओर देखते हुए कुछ सोच रहे थे। उसी मुद्रा में धीरे-धीरे बोले, "तुम शायद नहीं जानती माधवी, जिस दिन सब कुछ छोड़कर निकल पड़ा था उस समय हृदय एकदम उन्मुक्त था। सोचा था, बाकी के कुछ दिन भी इसी तरह कट जाएंगे। लेकिन ऐसा हुआ कहां? धूप से जलते हुए रास्ते के किनारे कहां थोड़ी-सी शीतल छाया छुपी है, देख नहीं सका।"

माधवी ने आंखें झुका लीं। हिमांशु मुस्कराते हुए आगे बढ़े और सस्नेह मुस्कराहट के साथ अपना दाहिना हाथ उसकी पीठ पर रख दिया। बोले, "लगता है, यही संसार की रीति है। जीवन के पहाड़ की किताब में

शून्य नामक कोई ग्रंक नहीं है।"

माधवी का सिर और झुक गया, साथ ही उसकी दोनों ग्रांखें भी छलछला उठीं। लेकिन तत्काल सहसा चंचल हो गई, "ग्राप हाथ-मुंह धो लीजिए, मामा जी। आपके लिए दूध लेकर ग्राती हूं।"

• • •

भारत मुद्रणालय, नवीन शाहदरा, दिल्ली, में मुद्रित

1122

